

ISSN No. 2348-6163

साहित्य-सेतु

अप्रैल-जून, 2018



प्रकाशक

आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी

हैदराबाद

डॉ. चंद्रा मुखर्जी



नव नियुक्त निदेशक
(प्रभारी)

साहित्य-सेतु

त्रैमासिक

वर्ष : 4 ♦ अंक : 15 ♦ अप्रैल-जून 2018 ई.

संपादक

डॉ. चंद्रा मुखर्जी

निदेशक

आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी

परामर्शमंडल

डॉ. टी. मोहन सिंह

डॉ. एम. वेंकटेश्वर

डॉ. पी. माणिक्यांबा 'मणि'

प्रो. ऋषभदेव शर्मा

प्रो. वी. कृष्ण

सह संपादक

श्रीमती पी. उज्ज्वला वाणी



प्रकाशक

आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी

हैदराबाद



संपादकीय कार्यालय :-

आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी
8 वी मंजिल, वेस्ट विंग,
गगन विहार(गांधी भवन के सामने),
एम.जे.रोड, नामपल्ली,
हैदराबाद - 500 001. (आं.प्र.)
फोन:040-2465 4849

साहित्य-सेतु (त्रैमासिक)

- ◆ प्रकाशित सामग्री की रीति-नीति अथवा लेखकों के विचारों से आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी अथवा संपादक-मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।
- ◆ साहित्य-सेतु से संबंधित सभी विवादास्पद मामले सिर्फ हैदराबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

शुल्क भेजने तथा 'साहित्य-सेतु' मंगवाने का पता:

(मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट 'आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी' के नाम)

निदेशक

आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी
8 वी मंजिल, वेस्ट विंग,
गगन विहार(गांधी भवन के सामने),
एम.जे.रोड, नामपल्ली,
हैदराबाद - 500 001. (आं.प्र.)
फोन: 040-2465 4849

Email:statehindiacademy@gmail.com

Web:www.aphindiacademy.org

वार्षिक : ₹ 150/- आजीवन : ₹ 1500/- (व्यक्तिगत)
संस्थाओं के लिए : वार्षिक: ₹ 500/-; आजीवन : ₹ 2000/-

आवरण :

श्री नरेन्द्र राय 'नरेन'

मुद्रक :

रैतुनेस्तम प्रेस, रेडहिल्ल्स, नामपल्ली, हैदराबाद-500004 फोन : 040-65345979

विषय-क्रम

पृ.सं.

- 5 संपादकीय
आलेख
- 9 आधुनिक हिन्दी कविता में नवजागरण की अभिव्यक्ति
(मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के संदर्भ में)
- डॉ. एम.वेंकटेश्वर
- 21 “वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव” - डॉ. नामदेव
- 24 शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में व्यंग्य - पुरुषोत्तम कुंदे
- 30 हिन्दी आलोचना में भारतेंदु का स्थान एवं योगदान
- बेंद्रे बसवेश्वर नागोराव
- 37 प्रेमचंद का धर्म और सम्प्रदाय निरपेक्ष कहानी साहित्य
- डॉ. मीना सिंह
- 41 कुँवर नारायण के खण्डकाव्यों में मिथकीय सन्दर्भ
- अमरनाथ प्रजापति एवं प्रो.सच्चिदानंद चतुर्वेदी
- 47 साहित्य-सर्जन में ‘चेतना’ और ‘अनुभूति’ का योगदान
- राजेश कुमार यादव
- 52 त्रिलोचन की चंपा
- डॉ. अरुण कुमार वर्मा
- 55 हिन्दी कहानी साहित्य में मोहनदास नैमिशराय का स्थान
- रश्मिरानी स्वार्ई
- 58 ओम नमो भगवते वासुदेवाय
- अभिनव भट्ट
- 60 ‘मुंडा’ एवं ‘गोंड’ जनजातीय का तुलनात्मक साहित्य
और सांस्कृतिक-मूल्य - राठोड़ सुरेश
- 70 “चित्रा मुद्गल का ‘आवां’ उपन्यास में नारीचेतना”
- यू.हरिकृष्ण आचार
- 72 दक्खिनी हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- डॉ. डी. विद्याधर

तेलुगु-साहित्य

77 पद-साहित्य और तेलुगु के भक्त कवि
- प्रो. पी. माणिक्याम्बा 'मणि'

82 तेलुगु में व्यंग्य साहित्य का उद्भव और विकास
- प्रो. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी

93 सत्य और तर्कयुक्त कल्पना का अद्भुत सामंजस्य और
चलम् के तेलुगु एकांकी - डॉ. एस. कृष्ण बाबु

कविता

99 बुढिया का घर, दीवारे....! - मीना खोंड की दो कविताएँ

100 अन्नदाता, अल्पविराम, अलगाव - कुमार लव

101 मील का पत्थर, विवशता - भगवतीलाल सोनी

अनूदित-कविता

103 देह एक-मृत्यु अनेक - अनुवाद : डॉ. कोम्मिशेट्टि मोहन
(तेलुगु मूल :- रामा चन्द्रमौलि)

गीत

106 अरुणा दुबलिश के दो गीत

कहानी

107 पुरानी दोस्ती - देवेन्द्र कुमार मिश्रा

अनुवाद-कहानी

113 माँ का कमरा - अनुवाद : डॉ. कोम्मिशेट्टि मोहन
(तेलुगु मूल :- रामा चन्द्रमौलि)

पुस्तक-समीक्षा

117 जीवन के कठोर धरातल को सींचती कविताएँ - रामचरण सिंह 'साथी'

....

हिन्दी की प्रखर स्त्रीवादी लेखिका कृष्णा सोबती को सन् 2017 में भारतीय साहित्य के सर्वोच्च सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। यह समूचे हिन्दी जगत के लिए हर्ष एवं गर्व का विषय है। इस अवसर पर 'साहित्य-सेतु' कृष्णा सोबती का हार्दिक अभिनंदन करती है। उपन्यास, कहानी, संस्मरण विधाओं में कृष्णा सोबती ने अपने कथा साहित्य में स्त्री संवेदनाओं की मार्मिक अभिव्यक्तियों को स्वर देने के लिए उत्तर पूर्व की स्थानीय बोलियों को माध्यम बनाया। उनके कथा साहित्य में मुख्यतः पंजाबी संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। खासकर उत्तर पूर्व की संस्कृति को उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किया है। हिन्दी को स्थानीय बोलियों से समृद्ध करने में कृष्णा सोबती का महत्वपूर्ण योगदान है। पंजाबी मिश्रित हिन्दी का एक नव्य स्वरूप उनके कथा साहित्य को लोक संस्कृति से जोड़ता है। कृष्णा सोबती अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुथरी रचनात्मकता के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने हिन्दी कथा भाषा को विलक्षण ताजगी दी है। उनके विशेष भाषा संस्कार, जीवंत प्रांजलता और संप्रेषण ने आज के कई उलझन भरे पेचीदा सत्य उजागर किए हैं।

भारतीय स्त्रीवादी साहित्यकारों में कृष्णा सोबती की विशेष पहचान स्त्री की वैयक्तिक पीड़ा के प्रति उनकी मौलिक उद्भावनाओं के कारण बनी है। पुरुष सत्ता के प्रति नारी का विद्रोह, देहवादी दर्शन, सामाजिक उत्पीड़न से मुक्ति के लिए संघर्ष, लैंगिक असमानता आदि स्त्रीवादी चिंतन के प्रमुख आयाम हैं। हिन्दी की स्त्रीवादी लेखिकाओं ने इन सभी स्थितियों पर अपनी रचनात्मकता द्वारा विचार किया है। चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग, कमाल कुमार, अनामिका, शुभा वर्मा, उषा प्रियंवदा आदि समकालीन हिन्दी कथा जगत में स्त्रीवादी लेखन के लिए जानी जाती हैं। कृष्णा सोबती इसी शृंखला में इनसे भिन्न वैचारिक धरातल पर स्वयं को स्थापित करती हैं।

कृष्णा सोबती की प्रथम कथाकृति 1967 में प्रकाशित 'मित्रो मरजानी' है जो लंबी कहानी या उपन्यासिका भी कहलाती है। उनकी दूसरी कथाकृति 'सूरजमुखी अंधेरे के' (1972) उपन्यास के रूप में ख्यातिप्राप्त है। 'यारों के यार, तिन पहाड़, डार से बिछुड़ी' उपन्यासों का कलेवर भी लंबी कहानियों का ही है किन्तु इन्हें उपन्यास विधा में ही ख्याति प्राप्त है। उनकी 'ऐ लड़की' (1991) भी ऐसी ही लंबी कहानी है जिसे उपन्यास विधा के अंतर्गत देखा जाता है। कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी और सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यासों की रचना से हिन्दी कथा जगत में 'साहसी लेखन' के

लिए बहुचर्चित हुई। क्योंकि इससे पूर्व हिन्दी में किसी महिला कथाकार द्वारा स्त्री की यौनिकता का मुखर चित्रण नहीं हुआ था। सातवें दशक से पूर्व स्त्री के काम संबंधों का चित्रण लेखिकाओं के लिए वर्जित क्षेत्र माना गया। कृष्णा सोबती ने इस वर्जना को भंग कर हिन्दी कथा जगत में स्त्री की काम-संबंधी मनोदशाओं का विश्लेषण बेबाकी से चित्रित किया। 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास ने स्त्री जीवन के एक अनुछुए पक्ष पर विचार करने के लिए हिन्दी कथा जगत में विशेष पहचान बनाई। इस उपन्यास ने स्त्रीवादी उपन्यासों की परंपरा को एक नई दिशा प्रदान की। 'मित्रो मरजानी' आज भी उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें पुराने मूल्यों को जीते हुए मध्यवर्गीय परिवार में एक विस्फोटक युवती की विद्रोही आचरण का चित्रण किया गया है। इसमें मध्यवर्गीय पंजाबी परिवार की जीवन शैली विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत हुई है।

इन कथाकृतियों में कृष्णा सोबती की भाषा पंजाबीपन की महक लिए, पंजाबी शब्दों और मुहावरों से भरपूर एक गतिशील भाषा है जो इसके पहले हिन्दी कथा साहित्य में प्रयुक्त नहीं हुई थी। पंजाबी के मिश्रण से हिन्दी को सजीव बनाने का कृष्णा सोबती का प्रयास अनूठा है। जिस समाज का चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है, यह भाषा उसके सर्वथा अनुकूल है।

'जिंदगीनामा' (1979) कृष्णा सोबती का वृहत प्रतिनिधि उपन्यास है जो उनके औपन्यासिक व्यक्तित्व को मूल रूप में परिभाषित करता है। इस उपन्यास की विशेषता इसमें लेखिका के द्वारा किया गया भाषा प्रयोग है। कृष्णा सोबती ने जिंदगीनामा में परिनिष्ठित हिन्दी को पंजाबी प्रयोगों से लाद दिया है जिससे वह हिन्दी के पाठकों के लिए अबोधगम्य और जटिल हो गई है। किन्तु यही इस उपन्यास की विशेषता बन गई जिसे खूब सराहा गया। 'जिंदगीनामा' के लेखिका के अनुसार - "एक ऐसा इतिहास है, जो लोकमानस की भागीरथी के साथ बहता, पनपता और फैलता है और जनसामान्य के सांस्कृतिक पुख्तापन में जिंदा रहता है।" जिंदगीनामा बीसवीं शताब्दी के प्रथम पंद्रह वर्षों में पंजाब के किसानों-ग्रामीणों के जीवन का चित्रण है। यह जिंदगी ठेठ यथार्थ बनाकर सामने आती है ; पंजाबी किसानों की मेहनत-मशक़त, संतुष्ट और मुक्त जिंदगी, जिसमें महाजन का शोषण और पुलिस का आतंक भी कोई ज्यादा हलचल नहीं पैदा करता। सांप्रदायिक भेदभाव से रहित, सहयोग और सद्भाव, हंसी-खुशी और छोटे-मोटे दुखों से भरे दिन-रात, ब्रिटिश शासन की अजेयता के प्रति आस्था आदि छोटे-छोटे प्रसंग उपन्यास को आकर्षक रूप में प्रस्तुत हैं।

कृष्णा सोबती के परवर्ती उपन्यासों में दिलोदानिश (1993) और समय सरगम (2000) महत्वपूर्ण हैं। भारत में मुसलिम शासन के समय, धीरे धीरे एक मिलीजुली संस्कृति विकसित हो रही थी। जिसमें विशेष रूप से कायस्थ रईस और दूसरे जर्मीदार शामिल थे। इस तबके का खानपान, वेषभूषा, रहनसहन, बोलचाल की भाषा और लहजा सबकुछ मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित था।

इसकी पारिवारिक और भीतरी ज़िंदगी तो सनातनी और परंपरागत पारिवारिक संहिता द्वारा निर्देशित होती थी, पर बाहरी जीवन पर मुस्लिम संस्कृति का गहरा प्रभाव था। कृष्णा सोबती ने 'दिलोदानिश' में इस परिवेश और उसमें केन्द्रित एक व्यक्ति की उलझी ज़िंदगी का, हवेली और फ़राशतखाना के द्वंद का, बहुत ही विश्वसनीय और मार्मिक चित्रण किया है।

हवेली और फ़राशतखाना का द्वंद मध्यकालीन सामंती मानासिकता से बहुत गहरे जुड़ा हुआ था। हवेली की अपनी संहिता होती थी जिसमें व्यक्ति की निजी भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं था। परिणामस्वरूप मर्द फ़राशतखाने में दिल बहलाया करते थे और स्त्रियाँ परंपरागत संहिता झेलती हुई कुंठाग्रस्त जीवन जीती थीं। पुरुष के अपनी प्रेमिका के बच्चों का पिता बन जाने पर स्थिति नाजुक और संघर्षपूर्ण बन जाती थी। इस प्रकार 'दिलोदानिश' में विवाहेतर संतान और उसकी स्वीकृति का प्रश्न अपनी सारी जटिलताओं और तीखेपन के साथ विद्यमान है। अवैध संतान की समस्या को गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास भी इस उपन्यास में दिखाई देता है। संपत्ति को लेकर पारिवारिक कलह और संघर्ष साथ साथ चलते थे। हवेली में बंद स्त्रियाँ कुंठित मानसिकता की शिकार होकर परपीड़न में आनंद लेने लगती थीं और फ़राशतखाने वाली औरत रईस के बच्चों की माँ होकर भी उसकी कानूनी पत्नी और हवेली का अंग नहीं हो पाती थीं।

कृष्णा सोबती ने इस परिवेश से जुड़ी संवेदनाओं, तकलीफ़ों, उलझन भरी मनःस्थितियों, मनोभावों आदि का बहुत ही मार्मिक अंकन दिलोदानिश में किया है। इस उपन्यास के माध्यम से कृष्णा सोबती ने दिल्ली की मूल संस्कृति की पहचान प्रस्तुत की है। यह संस्कृति लगभग हजार वर्षों के हिंदू-मुस्लिम संपर्क का परिणाम थी, जो आज लगभग नष्ट होने के कगार पर है। इस संस्कृति का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करके कृष्णा सोबती ने ऐतिहासिक कार्य किया है। इस उपन्यास की भाषा जो अरबी-फ़ारसी शब्दों से भरी पड़ी है। इसमें दिल्ली में बोले जाने वाले ठेठ देसी शब्दों का मिश्रण कर लेखिका ने भाषा को जीवन्त बना दिया है।

'समय सरगम' उपन्यास कथ्य और भाषा दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका विषय महानगर वासी उच्च-मध्यवर्गीय वृद्ध व्यक्तियों की जीवन स्थितियों, समस्याओं और संवेदनाओं से सम्बद्ध है। आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, इसके भीतर और बाहर जी रहे वृद्ध व्यक्तियों की समस्याएँ अत्यंत जटिल हो गई हैं। जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचकर अपनी संवेदनाओं और आकांक्षाओं को झेलते हुए, मृत्यु के भय से त्रस्त, झुँझलाते, रोग और बीमारियों से ग्रस्त, चिंताओं से परेशान, खान-पान पर लगे बंधनों में जीते वरिष्ठ नागरिकों की यह कहानी जितनी प्रामाणिक है उतनी ही संवेदनशील है। लेखिका ने इस प्रश्न को अपने निजी अनुभव और लेखनीय संवेदना के स्तर पर एक नई अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ साथ वृद्ध जनों के अंतरंग

संवादों के माध्यम से इसे मूर्त रूप देने का प्रयास किया है। 'समय सगरम' वृद्ध जीवन का एक संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करता है। उपन्यास में वृद्ध जनों की दयनीय स्थिति, उनकी अस्थिर मानसिकता, विवशता, अकेलापन, उनके प्रति परिवार के सदस्यों की उदासीनता और उपेक्षा का चित्रण लेखिका ने प्रभावशाली ढंग से किया है, एकाकी जीवन बिताने वाले दो वृद्ध जनों का, जिनमें एक स्त्री है और दूसरा पुरुष, एक साथ जीवन बिताने का विकल्प बहुत ही विश्वसनीय और मारकीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'समय सरगम' की भाषा आश्चर्यजनक रूप से नवीन है। इसके पूर्व कृष्णा सोबती 'मित्रो मरजानी' से लेकर 'दिलोदानिश' तक भाषा संबंधी कई प्रकार के प्रयोग कर चुकी थीं। अंततः उन्होंने 'समय सरगम' में वृद्ध जनों की संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए सक्षम भाषा का निर्माण किया जो उपन्यास के कथ्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

कृष्णा सोबती के द्वारा रचित संस्मरण साहित्य भी अत्यंत प्रभावशाली और महत्वपूर्ण है। 'हम हशमत (भाग 1 और 2)' उनके समकालीन साहित्यकारों के साथ साझे किए सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक अनुभवों का दस्तावेज़ है।

नारी विमर्श की दृष्टि से हिन्दी की समकालीन लेखिकाओं में कृष्णा सोबती का स्थान कई दृष्टियों से भिन्न तथा विशिष्ट है। इन्होंने कथाभाषा को लेकर कई प्रयोग किए जो जटिल होने के बावजूद सफल हुए, उसी तरह कथ्य के धरातल पर स्त्री जीवन के अछूते प्रसंगों को पहली बार साहसपूर्वक उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया। समाज के सभी वर्गों की नारी जीवन की शारीरिक एवं मानसिक विसंगतियों एवं समस्याओं का चित्रण निडर और बेबाक अंदाज में करने की क्षमता रखने वाली यह अभूतपूर्व लेखिका हैं।

- संपादक

आधुनिक हिन्दी कविता में नवजागरण की अभिव्यक्ति (मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के संदर्भ में)

- डॉ. एम.वेंकटेश्वर

भारत की जन चेतना की मध्य युगीन सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त कर आधुनिक बोध से संसक्ति कर नवीन युग में स्थापित करने का श्रेय और प्रेय भारतीय नवजागरण आंदोलन को है। बंगाल प्रदेश से उठी सामाजिक-धार्मिक सुधारवादी आंदोलन के इस झंझावात ने समूचे उपमहाद्वीप में एक नवीन चेतना जागृत कर दी। नवजागरण आंदोलन का अंतर्निहित लक्ष्य बहुआयामी रहा है। इसमें नवोत्थान और पुनरुत्थान के तत्व मौजूद हैं। भारत की प्राचीन गौरवशाली सांस्कृतिक परंपराओं का पुनरुद्धार तथा प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक वैभव को पुनः प्रतिष्ठापित करने की नव-नवोन्मेषशालिनी स्फूर्ति इस आंदोलन की प्रेरक शक्ति सिद्ध हुई। मध्यकालीन भारतीय इतिहास इस सत्य की ओर इंगित करता है कि 18 वीं शताब्दी में भारत की सृजनशीलता और प्राणशक्ति क्षीण पड़ने लगी थी और उसमें गतिहीनता आने लगी थी। भारतीय समाज में रूढ़िवादिता, तर्कहीनता, अंधविश्वास एवं कुप्रथाओं का प्राबल्य होने लगा।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी का भारतीय पुनर्जागरण या नवजागरण भारत के इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय है। यूरोप में इसे 'रेनासां' की संज्ञा दी गई। किन्तु यूरोपीय रेनासां और भारतीय नवजागरण, एक दूसरे से अनेक अर्थों में भिन्न हैं। भारत में लेखकों के एक वर्ग द्वारा भारतीय चिंतन के पुनरुत्थानवादी स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए पुनर्जागरण शब्द का प्रयोग किया गया। इनका विश्वास है कि जिस प्रकार यूरोप में पंद्रहवीं शताब्दी में इटली के विद्वदजनों और कलाकारों ने यूनान और रोम की विस्मृत वैभवशाली सांस्कृतिक विरासत को पुनः प्रतिष्ठापित किया, उसी प्रकार भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के चिंतकों ने अध्यात्म के उस कोष की खोज की, जो शताब्दियों से विस्मृत था। वे यह मानकर चलते हैं कि राममोहन राय से प्रारम्भ होने वाले समस्त बौद्धिक आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को पुनः स्थापित करना था। दूसरी ओर वे लेखक हैं जिनके लिए पुनर्जागरण का अर्थ है, नया आलोक, भविष्य की ओर अग्रसर होने की क्रांतिकारी प्रेरणा और रूढ़िवादी रीति-रिवाजों के बंधन से मुक्ति। उनके लिए पुनर्जागरण क्रान्ति से कम नहीं थी।

वेब्टर शब्दकोश के अनुसार 'रेनासां' का अर्थ- पुनरुत्थान (रिवाइवल) या पुनर्जन्म (रिबर्थ) है। इसके उदाहरण के रूप में 14 वीं, 15 वीं और 16 वीं शताब्दियों में यूरोप में कला, साहित्य और ज्ञान के पुनरुत्थान को प्रस्तुत किया जाता है। रेनासां अतीत की शक्तियों, विचारों या दृष्टिकोणों तथा परंपराओं में पुनः प्राणों का संचार होना (रिवाइटिलाइजिंग) या पुनरोद्भव

(रिसर्जेंस) है। इसमें पुरातन अस्थायी रूप से आप्लावित एवं निमज्जित अतीत का अन्वेषण करना तथा उसे पुनः सतह पर लाना निहित है। आधुनिक भारतीय रेनासां से अभिप्राय प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव की पुनः स्थापना से भी है। यह एक महान बौद्धिक आंदोलन था। भारत के संदर्भ में रेनासां, भारत के अतीत में पुनः प्राणों का संचार करना, मात्र ही नहीं था, बल्कि इसके साथ ही विदेशी शक्तियों द्वारा प्रसारित संस्कृतियों एवं परंपराओं के घात-प्रतिघात के संवहन की भी विवशता थी। उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक कारकों के प्रभाव से उत्पन्न नवीन चेतना तथा जागृति और उनके प्रणेताओं के विचारों तथा प्रयासों के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न प्रकार के सुधार आंदोलनों को समग्र रूप से आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण अथवा नवजागरण माना गया। इसमें यूरोपीय सभ्यता एवं संस्कृति के संघात से भारत में उत्पन्न परिवर्तन की प्रतिक्रियाएँ भी शामिल हैं।

पुनर्जागरण/नवजागरण का स्वरूप:

भारतीय पुनर्जागरण तात्विक दृष्टि से बौद्धिक, कलात्मक अथवा राजनीतिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक था। इसे पश्चिम के प्रबल प्रभाव के विरुद्ध भारतीय आध्यात्मिकता की प्रतिक्रिया का परिणाम भी कहा जाता है। पुनर्जागरण का उद्देश्य भारतीयों को अपनी प्राचीन संस्कृति के विस्तृत मूल्यों का स्मरण दिलाना तथा प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभव का पुनः अन्वेषण करना था, साथ ही इसका लक्ष्य सभी क्षेत्रों में वांछित परिवर्तन एवं सुधार लाना था। इसी कारण बौद्धिक आंदोलन के रूप में यह प्रारम्भ होकर यह अनेक धार्मिक-सामाजिक सुधारों का आधार बना और अंत में इसने भारत के राजनीतिक आंदोलन को तीव्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अतएव विद्वानों का यही मत है कि यह व्यापक क्षेत्र वाला अनेकपक्षीय आंदोलन था। यह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि समस्त क्षेत्रों को समेटने वाला आंदोलन था। पुनर्जागरण की भावना सर्वप्रथम धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुई, तदुपरान्त साहित्य एवं कला तथा अंततः भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में प्रवाहित हुई। इसने भारत को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, कलात्मक एवं धार्मिक क्षेत्रों में नवीन चेतना प्रदान की। अतीत की राष्ट्रीय संस्कृति से जीवन शक्ति ग्रहण कर इसे आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का प्रयास किया गया। भारतीय सभ्यता-संस्कृति की श्रेष्ठता, प्रगति की संभावना और पश्चिमी संस्कृति से संघर्ष की क्षमता में इसे पूर्ण विश्वास था।

भारतीय नवजागरण के विचारकों के अनुसार आक्रामक एवं अहंकार पूर्ण विदेशी सभ्यता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ही भारत में अतीत को पुनः जीवित करने की भावना का उदय हुआ। पश्चिम की वैज्ञानिक एवं यांत्रिक सभ्यता तथा भारतीय आध्यात्मिक एवं नैतिकतावादी संस्कृति के बीच के संघर्ष के फलस्वरूप ही नवीन चैतन्यवान भारत का जन्म हुआ।

नवजागरण ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों व कुप्रथाओं का उन्मूलन किया, स्वतंत्र अन्वेषण और चिंतन की प्राचीन परंपरा को पुनः जागृत किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत का जन मानस स्वयं समाज की आंतरिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने में समर्थ हो गया। इस आंदोलन ने भारतीयों में आत्मविश्वास एवं आत्म गौरव उत्पन्न किया तथा धार्मिक एवं सामाजिक सुधार के प्रयासों को बल प्रदान किया। अपने अतीत की विरासत के प्रति गर्व की भावना जगाकर नवजागरण ने राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में महती भूमिका निभाई। पुनर्जागरण ने भारत को पाश्चात्य संस्कृति का अंग मात्र बनने से बचा लिया। इसने भारतीय जन मानस में एक स्वशासित एवं स्वनिर्मित देश के राजनीतिक अस्तित्व की आकांक्षा को जन्म दिया। इस आंदोलन में 'स्व' की प्रबल प्रेरणा थी जिसने देशवासियों को स्वाधीनता और स्वायत्तता के अधिकार के प्रति जागृत किया।

अंग्रेजों के आधिपत्य के कारण यूरोपीय संस्कृति ने राजनीति और वैज्ञानिक प्रगति के साथ भारतीय जीवन को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया। अंग्रेजों ने भारत में नई शिक्षा व्यवस्था को स्थापित किया। मानसिक दासता को जन्म देने वाली इस शिक्षा व्यवस्था ने भारत में प्रबुद्ध बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म दिया जिसने नवजागरण के धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई।

भारतीय नवजागरण के प्रणेताओं पर पाश्चात्य बौद्धिक चिंतन का प्रबल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। तदयुगीन यूरोपीय चिंतन प्रणाली में व्यक्तिवाद एवं हेतुवाद का प्राबल्य था। अंधविश्वास के स्थान पर तर्क और बाह्य सत्ता या प्रमाण के स्थान पर अंतश्चेतना का महत्व बढ़ा। इसके कारण विचार स्वातंत्र्य को प्रेरणा मिली।

स्वतंत्र चिंतन एवं अन्वेषण प्रवृत्ति के पुनः जागृत होने से धर्म, समाज व राजनीति के प्रति जन सामान्य में विवेचनात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ। भारतीय नवजागरण आंदोलन एवं उनके प्रणेताओं को यूरोपीय वैज्ञानिक प्रगति, हेतुवाद, निरीश्वरवाद, उदारवाद, राष्ट्रवाद तथा राजनीतिक दर्शन से विकसित हुआ। भारतीय नवजागरण आंदोलन एवं उनके प्रणेताओं को यूरोपीय वैज्ञानिक प्रगति, हेतुवाद, निरीश्वरवाद, उदारवाद, राष्ट्रवाद तथा राजनीतिक दर्शन से विकसित स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता, लोकतांत्रिक समाजवाद आदि सिद्धांतों ने संपुष्ट किया। नवजागरण की प्रक्रिया केवल धार्मिक सुधार तक ही सीमित नहीं थी, यह एक समग्र आंदोलन था जिसने राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया। इस आंदोलन ने केवल धर्म के ही क्षेत्र में नहीं बल्कि साहित्य, कला, विज्ञान, शिक्षा, राजनीति तथा सामाजिक व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को भी प्रभावित किया। भारतीय नवजागरण उदार, मानवतावादी चरित्र का समन्वयात्मक आंदोलन था। इसने सामाजिक विषमता और भेदभाव पर कठोर प्रहार कर, विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के पारस्परिक विरोध को घातक घोषित कर, समन्वय के श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण करने की दिशा में

जनसामान्य को प्रेरित किया। अतः यह पृथकतावादी आंदोलन कदापि नहीं था। सर्व-धर्म समभाव और समन्वयवादी सार्वभौमिकता में विश्वास पैदा करने वाली यह एक विशिष्ट चेतना थी। इसी कारण इस आंदोलन ने कट्टर धार्मिक आचरण के स्थान पर धर्म निरपेक्षता को प्रोत्साहित किया। इतिहासकार 'के एम पणिक्कर' के अनुसार नवजागरण आंदोलन में समाज सुधार के प्रयासों में धार्मिक सुधार भी सम्मिलित था। धार्मिक सुधार के बिना सामाजिक सुधार संभव नहीं था क्योंकि भारतीयों के मानस पर धर्म का प्रबल आधिपत्य था और पश्चिम के समान, बौद्धिक तर्क से इसे शिथिल नहीं किया जा सकता था। अतएव सामाजिक परिवर्तन को स्वीकृति प्रदान करने के लिए धार्मिक आचरण और कर्मकांड के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना अपेक्षाकृत सरल समझा गया।

नवजागरण काल में भारत के रूपान्तरण का एक और महत्वपूर्ण कारक, पश्चिम के ज्ञान तथा विचारों को आत्मसात करने का प्रयास सिद्ध हुआ। स्वामी दयानंद को छोड़कर शेष सभी सुधारकों ने पश्चिमी वैज्ञानिक एवं राजनीतिक ज्ञान को विशेष महत्व दिया। उस काल के प्रायः सभी चिंतकों और समाज सुधारकों ने पश्चिमी ज्ञान के स्रोतों को आत्मसात कर उसके प्रसार को अपना ध्येय बनाया, जिस कारण पश्चिमी शिक्षा आधुनिक भारत की सांस्कृतिक परंपरा का अभिन्न अंग बन गई। राममोहन राय भारत में पश्चिमी शिक्षा के अग्रदूतों में एक थे और शिक्षा प्रणाली में पूर्वी तथा पश्चिमी ज्ञान के संयोजन के प्रखर समर्थक एवं प्रतिपादक थे। उन्होंने 1817 में कलकत्ता में पश्चिमी ढंग का एक महाविद्यालय, 'हिन्दू कॉलेज' स्थापित किया। 'के एम पणिक्कर' के अनुसार भारत के सांस्कृतिक रूपान्तरण का एक और लक्षण था, राष्ट्रवाद का उत्थान।

भारतीय नवजागरण एक बरगद के वृक्ष के समान था जिसमें अनेक शाखाएँ विद्यमान थीं जो भले ही पृथक दिखती हों किन्तु उनका मूल एक ही था। निःसंदेह धार्मिक और सामाजिक सुधारों के आंदोलन घनिष्ठ रूप से राजनीतिक मुक्ति आंदोलन से जुड़े थे। राजा राममोहन राय के साथ आरंभ होने वाले नवजागरण आंदोलन ने बहुत हद तक सुधारों का कार्य प्रारम्भ कर दिया, जिससे आने वाली पीढ़ियों के समक्ष सुधारों की बहुमुखी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो गया। आधुनिक काल के प्रारम्भ में हिन्दू समाज रूढ़िग्रस्त था, वह हजारों निषेधों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं से जकड़ा हुआ था जिन्हें ईश्वरीय विधान के रूप में देखा जाता था। किन्तु नवजागरण के सुधारों ने भारतीय समाज में व्याप्त अंध विश्वास और धार्मिक कट्टरता का खंडन कर समाज में ईश्वरीय चेतना को समानता और सहिष्णुता के भाव के साथ प्रतिपादित किया। बाल-विवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, विधवाओं पर अत्याचार जैसे अमानुषिक कार्यकलापों को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। बालिकाओं के लिए शिक्षा के स्रोत खोल दिए गए, अस्पृश्यता पर वैधानिक रोक लगा दी गई।

दुर्भाग्यवश नवजागरण का सामाजिक-धार्मिक सुधार का आंदोलन अपने चरम निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाया क्योंकि नवजागरण आंदोलन के अंतर्गत प्रारम्भ की गई धार्मिक-सामाजिक

सुधार की प्रक्रिया के पूर्ण होने से पहले ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आंदोलन ने इसे पीछे छोड़ दिया। सामाजिक सुधार की अपेक्षा राजनीतिक स्वतन्त्रता ने प्राथमिकता हासिल कर ली जिस कारण नवजागरण आंदोलन क्षीण पड़ गया। प्राथमिकताओं के उलट जाने से नवजागरण आंदोलन के प्रधान लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सके। नवजागरण की प्रक्रिया के पूर्ण न होने के दुष्परिणामों को आज भी देश भुगत रहा है। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई किन्तु देशवासी मध्ययुगीन धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके। इसके बावजूद राष्ट्रीय आंदोलन के नेता नवजागरण से प्रेरित और प्रभावित थे और उन्होंने इसकी उद्देश्यों को स्वीकार किया। उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण आंदोलन का आधुनिक भारत के निर्माण में अप्रतिम योगदान है।

रामधारीसिंह दिनकर ने पुनरुत्थान अथवा नवजागरण के संदर्भ में कहा है- “पुनरुत्थान से मेरा तात्पर्य उस वैचारिक आन्दोलन से है जो भारत और यूरोप के संपर्क के साथ आरंभ हुआ और जो, कदाचित, आज भी चल रहा है। यह आंदोलन भारत में नयी मानवता के जन्म का आंदोलन है। एवं उसके प्रवाह के साथ केवल यूरोपीय विचार ही भारत में नहीं आ रहे हैं, बल्कि, इस देश के बहुत से प्राचीन विचार भी नवीनता प्राप्त कर रहे हैं। पौराणिक कथाओं पर इस आंदोलन ने नयी आभा बिखेरी है एवं इसके आलोक में हमारे इतिहास की अनेक घटनाएँ और अनेक नायक नयी ज्योति से जगमगाने लगे हैं।”

नवजागरण एवं पुनरुत्थानवादी विचारधारा ने भारतीय साहित्य में आधुनिक बोध का बीजांकुरण किया। उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक साहित्य नवजागरण की युगीन चेतना से आप्लावित हुआ। बँगला में बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ इसके शलाका पुरुष बने। भारतीय नवजागरण का उद्गम स्थल बंगाल की चिंतनशील उर्वरा भूमि रही है। बंगाल के नवजागरण की दीपशिखा ने भारत के अन्य प्रान्तों को भी अपनी ऊष्मा से प्लावित कर दिया। इस आंदोलन के आदि पुरुष राजा राममोहन राय (1772-1833) ही थे। वे संस्कृत, अरबी, फारसी और हिन्दी के प्रकांड विद्वान थे तथा अपने देश के लिए उनके हृदय में असीम प्यार था। किन्तु, जब शिक्षा का प्रश्न आया, वे अंग्रेजी सरकार से लड़ पड़े कि भारतवासियों को भी अंग्रेजी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाए जिससे वे विज्ञान की विविध शाखाओं एवं यूरोप में विकसित समाजशास्त्र का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें। राममोहन राय वेद और उपनिषदों के परम भक्त थे और भारतवासियों को भी वे धर्म आरूढ़ रखना चाहते थे। अतएव उनकी शिक्षा का सार यह था कि नवीन भारत के एक हाथ में उपनिषदों का गूढ सत्य और दूसरे में विज्ञान की मशाल होनी चाहिए। राममोहन के बाद देश में पुनरुत्थान के जो भी समर्थक उत्पन्न हुए, उनमें से प्रायः सब का यही दृष्टिकोण रहा। केशवचंद्र सेन, द्वारकानाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महादेव गोविंद रानाडे, श्रीमती एनीबेसेंट, लोकमान्य तिलक, अरविंद, महर्षि रमण,

पं.मदनमोहन मालवीय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और डॉ.राधाकृष्णन, इनमें से प्रत्येक ने यह माना कि वेद और उपनिषदों से दूर होना भारत के लिए अशक्य है। वेद और उपनिषदों के सत्वों को छोड़ने से भारत उस वस्तु से वंचित हो जाएगा जो उसके समग्र इतिहास का निचोड़ है, जो उसके संपूर्ण अस्तित्व एवं व्यक्तित्व का सार है। किन्तु साथ ही प्रत्येक ने यह भी कहा कि भारत का प्राचीन ज्ञान चाहे जितना भी विशिष्ट और महान हो, यथेष्ट नहीं है। इस प्राचीन ज्ञान का सामंजस्य हमें उस नवीन ज्ञान से बिठाना चाहिए जो यूरोप में जन्मा और वहीं विकसित हुआ है। अर्थात्, पुनरुत्थान के इस महाव्यापक आंदोलन का सार यह है कि प्राचीन भारत और नवीन यूरोप के सम्मिलन से जो व्यक्तित्व उत्पन्न होगा वही आगामी भारत की असली व्यक्तित्व होगा।

भारत में नवजागरण या पुनरुत्थान (रेनासांस) का आंदोलन सबसे पहले बंगाल में उठा क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार सबसे पहले बंगाल में ही हुआ था। तत्पश्चात् ज्यों-ज्यों अंग्रेजी का प्रसार अन्य क्षेत्रों में होता गया, वहाँ भी पुनरुत्थान के लक्षण प्रकट होने लगे। हिन्दी प्रान्तों में अंग्रेजी का व्यापक प्रचार बहुत बाद में हुआ। अतएव इन प्रान्तों में पुनरुत्थान का आंदोलन भी प्रकारांतर से ही हुआ। यह भी ध्यातव्य है कि बंगाल में पुनरुत्थान के नेता राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, रामकृष्ण परम हंस और स्वामी विवेकानंद थे। अतएव बंगाल में उस आंदोलन के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हुए। किन्तु हिन्दी प्रान्तों में पुनरुत्थान का नेतृत्व, मुख्यतः स्वामी दयानंद ने किया था। अतएव यहाँ पुनरुत्थान के कवि मैथिलीशरण गुप्त हुए। नवजागरण ने हमारी सारी संस्कृति, संपूर्ण इतिहास और समग्र चेतना पर जो नवीन आलोक फैलाया, उसकी अधिक से अधिक अभिव्यक्ति सबसे प्रथम मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में ही हुई। इसलिए हिन्दी में नवजागरण अथवा पुनरुत्थान के कवि वे ही माने जाएंगे, ठीक उसी प्रकार, जैसे बंगाल में पुनरुत्थान के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हुए हैं।

हिन्दी में पुनरुत्थान के भाव भारतेन्दु तथा उनके समकालीन कवियों के साथ ही प्रकट होने लगे थे और तभी से हिन्दी भाषी जनता के बीच एक नयी सोच भी उदित होने लगी थी। कविता में नए विषयों (देश भक्ति) का प्रवेश, अंग्रेजी और संस्कृत कविताओं के अनुवाद तथा श्रीधर पाठक और जगमोहन सिंह के नए प्रयोग, ये सब इस नवीन रुचि को ही प्रकट करने के प्रयास थे। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाने की उमंग भी इसी नवीन चेतना से ही निकली थी। अतएव कहा जा सकता है कि जब मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964) का आविर्भाव हुआ, उसके पूर्व ही, पुनरुत्थान ने हिन्दी में नए क्षितिज का निर्माण कर दिया था। किन्तु उस क्षितिज पर स्थिर रहकर गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से, पुनरुत्थान को जितनी अभिव्यक्ति गुप्त जी ने दी उतनी उनके पूर्व का कोई भी कवि नहीं दे सका था।

मैथिलीशरण गुप्त, राष्ट्रकवि कहलाए, 'भारत-भारती और जयद्रथ वध' के कारण। भारतीय नवजागरण में इन दोनों काव्यों का अभूतपूर्व स्थान है। गुप्त जी भारतीय नवजागरण के

अमर गायक हैं। उनके 'भारत-भारती' की अनुगूँज ने तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार को झकझोर दिया। 'भारत-भारती' (प्र.1914) ने देशवासियों में अत्माभिमान जागृत किया और मूक भारत को वाणी दी।

“मानस भवन में आर्य जन जिनकी उतारें आरती,
भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी हमारी।”
“भू लोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है वह कौन? भारतवर्ष है।” (भारत-भारती)

भारत-भारती निश्चित रूप से गुप्त द्वारा रचित पुनरुत्थानवादी नवजागरण काव्य है जिसे अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। यह प्रकाशित होते ही संपूर्ण हिन्दी क्षेत्र में फैल गई और अनेक स्थानों पर प्रभात फेरियों में तथा विद्यालयों में प्रार्थना गीत के रूप में इसे गाया जाने लगा। हिन्दी भाषी जनता ने हृदय से गुप्त जी को जातीय कवि स्वीकार कर लिया। विद्वानों ने लक्ष्य किया है कि भारत-भारती में भारत की जो परिकल्पना है, वह सिर्फ आर्यावर्त तक सीमित नहीं है, इसके भविष्यत खंड में जब कवि भारतीयों को संबोधित करता है तो राष्ट्रवाद की प्रबलता के साथ वह जाति, वर्ण, धर्म और उत्तर-दक्षिण के भेद का अतिक्रमण कर जाता है। एकता के लिए वह संपूर्ण भारतीय जनता आ आह्वान करते हुए कहता है:

“है ज्ञात क्या तुमको नहीं तुम लोग तीस करोड़ हो,
यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो?
उत्साह-जल से सींचकर हित का आखाड़ा गोड़ दो,
गर्दन अमित्र अधःपतन की ताल ठोंक मरोड़ दो।” (भारत-भारती)

सांप्रदायिक वैमनस्य को दूर कर एक होने का आह्वान भी कवि ने इसी काव्य में किया था-

“आओ मिलें सब देश बांधव हार बनाकर देश के,
साधक बनें सब प्रेम से सुख-शांतिमय उद्देश के।
क्या सांप्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो।
बनती नहीं क्या एक माला विविध सुमनों की कहे ?” (भारत-भारती)

“संस्कृति का प्रत्येक आंदोलन धीरे-धीरे चलता है। पुनरुत्थान का रस भी हिन्दी में बहुत धीरे-धीरे पका। मेरा अनुमान है कि मैथिलीशरण जी में यह रस, पहले पहल, 'साकेत' में आकर परिपाक पर मिलता है।” (दिनकर) आधुनिक भारतीय चिंतन प्रणाली, विशेष रूप से विज्ञान,

बुद्धिवाद और प्रजातांत्रिक विचारों से निरंतर प्रभावित होती रही, इससे भारतीय संस्कृति में आमूल परिवर्तन घटित होने लगे हैं और इसके फलस्वरूप अपने इतिहास और पुराण को देखने की हमारी दृष्टि में भी बहुत परिवर्तन आ गया है। वर्तमान सदैव अतीत पर नया प्रकाश डालता रहता है और इसी प्रक्रिया के कारण अतीत का जीवित अंश निरंतर वर्तमान के साथ रहता है। पुनरुत्थान के क्रम में राम कथा विषयक हमारी अनुभूति में जो परिवर्तन आया, वह सारा का सारा मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में व्यक्त हुआ है।”

साकेत के राम, वही पात्र हैं जिनके दर्शन हमें वाल्मीकीय अथवा तुलसीकृत रामायण में होते हैं। किन्तु पुनरुत्थान के भावों से प्रभावित कवि ने उन्हें सर्वथा भिन्न दृष्टि से देखा है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई के अनुसार- “तुलसी कृत रामायण में राम के रूप में, ईश्वर की मानवता का चित्रण हुआ है, किन्तु साकेत में राम के बहाने मानव की ईश्वरता चित्रित की गई है।

मैथिलीशरण गुप्त का हृदय भक्त का हृदय है। एवं राम को वे अपने परम इष्टदेव के रूप में भजते हैं। उनका प्रत्येक काव्य राम या सीता के नाम स्मरण के साथ आरंभ होता है। यदि उनका आविर्भाव पुनरुत्थान के पूर्व हुआ होता तो 'साकेत' में निश्चित रूप से राम के ईश्वरत्व का ही आख्यान करते। तुलसी ने जैसे राम को अपना परमाराध्य एवं लोक-परलोक का नियंता मानकर रामचरित मानस की रचना की, गुप्त जी का हृदय उनसे भिन्न मार्ग लेने वाला नहीं था। किन्तु बुद्धिवादी युग ने उनकी कृति को नवीन रूप प्रदान किया। राम का रूप उन्होंने वैसा ही अंकित किया जैसा उनका युग चाहता था। अपने हृदय के मूल में राम को परब्रह्म का अवतार मानते हुए भी बुद्धिवादी युग के इस परम आस्तिक कवि ने साकेत में राम को अवतार के रूप में कम, युगपुरुष के रूप में अधिक चित्रित किया है। और पुनरुत्थान के क्रम में भारत ने जो यह मान्यता धारण की कि, प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी मात्रा में ईश्वर का स्वरूप है, अतएव, अवतार और युग पुरुष में बहुत कुछ समानता होती है, यह मान्यता भी साकेत के राम के व्यक्तित्व में अंतर्निहित है।

“मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
 जन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।
 सुख शांति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,
 विश्वासी का विश्वास बचाने आया।
 मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
 जो विवश, विकल, बलहीन, दीन शापित हैं।
 भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
 नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।” (साकेत)

प्रस्तुत उद्धरण गुप्त जी की अवतारवाद विषयक मान्यताओं की व्याख्या है। राम स्वयं परब्रह्म हैं, इस तथ्य में उनकी आस्था उतनी ही गहरी और अचल है जितनी कि तुलसीदास को थी। किन्तु अवतारों के कर्तव्यों के विषय में गुप्त जी नव युग की विचारधारा से प्रेरणा लेते हैं।

प्राचीन और मध्ययुग में लोक को हीन तथा परलोक को श्रेष्ठ माना जाता था। किन्तु नए युग की मान्यता इससे भिन्न है। भारत में प्रवृत्ति मार्गी दर्शन से प्रेरित होकर अब लोक को सत्य तथा श्रेष्ठ माना जाने लगा है तथा जो लोग परलोक की सत्ता में विश्वास करते हैं उनकी भी मान्यता अब यह है कि परलोक सुधार का भी एकमात्र साधन इस लोक की ही सेवा तथा सुधार है। इसी नए धर्म का आख्यान करते हुए साकेत के राम कहते हैं-

“संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।”(साकेत)

आज का सच्चा धर्म वह नहीं है जो कर्मठ नवयुवकों को गेरुआ पहनाकर उन्हें समाज की कर्मधारा से विच्छिन्न करता है, अपितु, वह जो सन्यासियों से भी यह कहता है कि अरण्यवास छोड़कर जन-समाज के भीतर जाकर मनुष्यों की सेवा किए बिना तुम्हें शांति नहीं मिलेगी।

इसी प्रकार अवतारों के नाम स्मरण की अपेक्षा उनके गुण, कर्म और स्वभाव का अनुकरण कहीं अधिक फल दायी है ; यह भी कि मनुष्य यदि अपनी पतित स्थिति में ही पड़ा रह गया तो ईश्वर का नर-शरीर धारण करना व्यर्थ है। मनुष्य योनि में ईश्वर के अवतार का स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए कि मानव ईश्वरत्व की ओर बढ़ना आरंभ कर दें। ‘नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया’ - यह भारतीय पुनरुत्थान की सबसे बड़ी शिक्षा है। संयोग की बात है कि यह भाव महर्षि अरविंद ने दर्शन के रूप में विकसित किया।

भारत में देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना की धारा भी नवजागरण के साथ ही जन मानस में विकसित हुई थी। अतएव साकेत के राम प्रकारांतर से देश भक्ति की भी प्रेरणा देते हैं-

“अथवा आकर्षण पुण्य भूमि का ऐसा
अवतरित हुआ मैं आप उच्च फल जैसा।”

यहाँ स्पष्ट ही पुण्य भूमि से तात्पर्य भारतवर्ष है। ‘आकर्षण’ शब्द के पीछे उस श्लोक की प्रेरणा छिपी हुई है जिसमें कहा गया है कि भारत इतना पवित्र देश है कि देवता भी यहाँ जन्म लेने को तरसते हैं। इसी प्रकार ‘सुख-शांति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया’ के भीतर से स्वाधीनता संघर्ष का औचित्य ध्वनित होता है। साकेत के राम वैदिक धर्म तथा आर्य सभ्यता के प्रचारक हैं, यह तथ्य पूरे काव्य में कई स्थलों पर पुनरावृत्त होती है।

राष्ट्रीयता भारतवर्ष में पुनरुत्थान के गर्भ से उत्पन्न हुई। यहाँ पहले राममोहन, केशवचंद्र,

दयानंद, विवेकानंद और एनी बेसेंट हुईं, तब अरविंद, तिलक, गोखले और गांधी का आगमन हुआ। यही कारण है कि भारतीय राष्ट्रीयता के सर्वोच्च पुरुष महात्मा गांधी राजनीति से अधिक संस्कृति के नेता दिखाई देते हैं। 'साकेत' में राष्ट्रीयता और स्वाधीनता संग्राम, दोनों की पदचाप स्पष्ट सुनाई देती है ; ननिहाल से वापस आने पर शत्रुघ्न जब क्रोध से काँपते हुए कहते हैं-

“वह प्रलोभन हो किसी के हेतु
तो उचित है क्रान्ति का ही केतु।
दूर हो ममता, विषमता,
मोह, आज मेरा धर्म है राजद्रोह।”

पहले पद से तो भारतीय क्रान्ति का औचित्य एवं उसकी आवश्यकता ध्वनित होती है तथा दूसरे पद में उस नारे की ध्वनि सुनाई पड़ती है जिसका उद्देश्य लोगों के हृदय पर यह विश्वास जगाना था कि पराधीन देश में राजद्रोह पाप नहीं, पुण्य का कर्म होता है। इसी प्रकार, राम जब वन जा रहे हैं तब बहुत से अयोध्यावासी यह कहकर उनके मार्ग में लेट जाते हैं कि-

“राजा हम ने राम ! तुम्हीं को है चुना,
करो न तुम यों हाय ! लोकमत अनसुना।
जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ।
यों कह पथ में लेट गए बहुजन वहाँ।

यह सविनय अवज्ञा की प्रतिध्वनि ही है। स्वयं राम ने भी इसे 'विनत विद्रोह' कहा है-

“उठो, प्रजाजन, उठो, तजो यह मोह तुम,
करते हो किस हेतु विनत विद्रोह तुम?”

किन्तु पुनरुत्थान का सबसे गंभीर प्रभाव वह है जो गुप्त जी की नारियों के प्रति दृष्टि में लक्षित होता है। नारियों के प्रति अवज्ञा, अवमानना तथा प्रताड़ना के मध्यकालीन बोध पर नवजागरण ने कठोर प्रहार किया। इसी आंदोलन ने भारतीय समाज में नारी के प्रति निंदा के स्थान पर मर्यादित गौरव का भाव जागृत किया। नारी के प्रति निंदा और अन्यायपूर्ण शोषण के स्थान पर समता का भाव जागृत किया। नवजागरण आंदोलन ने सिद्ध कर दिया कि निवृत्ति के साथ संन्यास और प्रवृत्ति के साथ गार्हस्थ्य के गौरव में वृद्धि होती है जिससे नारियों की मान-मर्यादा स्वाभाविक रूप से अपना अधिकार प्राप्त करती है। पुनरुत्थान ने प्रवृत्ति की जो महिमा जगाई उससे गार्हस्थ्य गौरवपूर्ण हो उठा और उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में स्त्री जाति आदरणीया हो उठी। भारतीय समाज में व्याप्त नारी विषयक मध्य युगीन सामंती भोगवादी सोच को बदलने में पुनरुत्थान

आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्त्री, पुरुष की समकक्ष एवं उसका पूरक अंश है, यह अनुभूति, नवजागरण की चेतना से प्रखर हो सकी और इसके बाद तो नारी के प्रति पुरुष की उदारता में तेजी से बदलाव आया। यहाँ तक कि छायावादी हिन्दी काव्य में स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ तथा पुरुष की प्रेरक शक्ति के रूप में वर्णित किया गया। वस्तुतः गुप्त जी की नारी भावना की पूरी अभिव्यक्ति साकेत, यशोधरा, विष्णुप्रिया और द्वापर में हुई है। साकेत, यशोधरा और विष्णुप्रिया में से प्रत्येक काव्य की मूल प्रेरणा ही किसी न किसी नारी पात्र के प्रति कवि की एकांत भक्ति थी। उर्मिला, यशोधरा और विष्णुप्रिया, ये तीनों स्त्रियाँ, पुरुषों के वैराग्य प्रेम तथा किसी महोन्नत सिद्धि प्राप्ति की साधना के लिए पुरुषों द्वारा निश्चित एवं अनिश्चित काल के लिए परित्यक्त पात्र हैं। जिनके प्रति भारतीय काव्य जगत में किसी कवि ने उनका अब्याज्य त्याग के प्रति किसी भी प्रकार की करुणा एवं गौरव का भाव प्रदर्शित नहीं किया। इस रूप में वे ऐसी असंख्य स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनके पतियों ने उन्हें अपनी मोक्ष सिद्धि के मार्ग की बाधा मानकर उन्हें त्याग दिया। अथवा जिसका वैवाहिक जीवन इसलिए कष्टमय हो गया क्योंकि उनके पति किसी बड़े लक्ष्य की सिद्धि में जा लगे थे। उपर्युक्त तीनों नारियों में से उर्मिला ऐसी पात्र है जिसका वियोग निरवधि नहीं था, शेष दोनों नारियाँ तो आजीवन विरह की अग्नि में झुलसती हुई जीवित वैधव्य को झेलती रहीं। ये तीनों नारियाँ भारतीयों की स्मृति में व्यक्तित्वहीन होकर ही जीवन विताती रहीं। ऐसी पीड़ित और उपेक्षित नारी जाति का प्रतिनिधित्व करने वाली इन तीनों नारी पात्रों का साहित्य में उद्धार केवल मैथिलीशरण गुप्त द्वारा ही संभव हो सका। राष्ट्रकवि के हाथों उनमें से प्रत्येक को उनका व्यक्तित्व प्राप्त हो गया। गुप्त जी ने इन तीनों में से उर्मिला के व्यक्तित्व को सँवारने पर जितना प्रयास किया उतना प्रयास वे यशोधरा और विष्णुप्रिया के लिए नहीं कर सके। फिर भी यशोधरा और विष्णुप्रिया के व्यक्तित्व में जो चमक है वह उर्मिला के व्यक्तित्व में नहीं मिलती। कारण स्पष्ट है कि वनवास की समाप्ति के बाद उर्मिला के कष्ट भी एक प्रकार से समाप्त हो गए, किन्तु यशोधरा और विष्णुप्रिया की वेदना अंतहीन थी।

पुनरुत्थान ने लोगों में नारी जाति के प्रति जिस सहानुभूति और सम्मान की भावना को जागृत किया, वह युग कवि मैथिलीशरण गुप्त के भीतर से अनेक रूपों में व्यक्त हुई। पिछले सौ वर्षों में जिस वैचारिक आंदोलन ने नारियों के उत्थान को संभव किया, उसके तीन सोपान दिखाई देते हैं। पहले तो नारियों के प्रति सहानुभूति जागी, तब नर-नारी समानता के भाव प्रकट हुए और तीसरे सोपान पर पहुँचकर नारी विद्रोहपूर्वक अपने अधिकार मांगने लगी। इस दृष्टि से गुप्त जी का भाव पहले दो सोपानों का भाव जगत है। उन्होंने नारी जाति के प्रति अपनी निश्छल सहानुभूति प्रकट करके पुरुषों के भीतर यह प्रेरणा जाग्रत की कि पुरुषों को स्वेच्छा से नारियों को उनके अधिकार समर्पित कर देने चाहिए। इसीलिए उनके द्वारा चित्रित नारियाँ करुणा की सजीव प्रतीमाएँ हैं, जो

बोलती तो कुछ नहीं, किन्तु अपने करुण विगलित भावनाओं से पुरुषों की कठोरता को पिघला देती हैं-

“किन्तु माँ है वृद्धा, हतपुत्रा और विधवा,
मैं हूँ परित्यक्ता वधु भिक्षु हुए पति की।
अब निज निःस्वता ही संपदा हमारी है,
यह तो तुम्हारे यशः पट के ही योग्य है।” (विष्णुप्रिया)

किन्तु सहानुभूति यदि विफल हुई, यदि पुरुषों के कठोर हृदय को स्पंदित करने में वह असमर्थ रही तो विद्रोह का आश्रय लेना पड़ सकता है, गुप्त जी ने यह संकेत भी दिया है-

‘व्यथित हो रहा मेरे कारण सारा स्त्री संसार है,
मुझ पर कृपा, कोप स्वामी सारा स्त्री बारंबार है।
कहता है, नारी पर नर का कितना अत्याचार है।
लगता है, विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है।’ (विष्णुप्रिया)

विष्णुप्रिया के मुख से विद्रोह के जो संकेत दिखाए गए हैं उसकी झांकी ‘द्वापर’ में ही मिल चुकी थी। नारी अपनी पराधीनता के प्रति ‘द्वापर’ में ही पुरुष सत्ता के प्रति विद्रोह प्रकट कर देती है।

इस प्रकार पुनरुत्थान के बाद भारत में जो नवीन क्षितिज प्रकट हुआ, यह आवश्यक था कि कोई कवि उस क्षितिज खड़ा होकर भारत के जातीय संस्कारों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करे। यह कार्य भारतीय भाषाओं में अनेक कवियों ने किया। हिन्दी में व्यापक स्तर पर यह कार्य राष्ट्र राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया। ‘जय-भारत, जयद्रथ-वध, द्वापर, साकेत, पंचवटी, यशोधरा, विष्णुप्रिया’ काव्यों में नवजागरण और पुनरुत्थान के तत्व, भारतीयता को अक्षुण्ण रूप से पुनर्जीवित करने में सक्षम हुए हैं।

....

*संपर्क-सूत्र :- पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा
विश्वविद्यालय, हैदराबाद। मो: 98490 48156*

“वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव”

- डॉ. नामदेव

वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से जो समाज उत्पन्न होता है उसे ‘ग्लोबल गाँव’ यानी ‘वैश्विक ग्राम’ की संज्ञा दी जाती है। मतलब सम्पूर्ण दुनिया अनेक महाद्वीपों, भूभागों में विविधताओं सहित विभाजित हुए भी एक गाँव के समान दिखती है जिसमें कोई पराया या अजनबी नहीं है।

सुविख्यात चिंतक नोअम चोमस्की के अनुसार सैद्धांतिक रूप में वैश्वीकरण शब्द का उपयोग आर्थिक वैश्वीकरण के नव उदारवाद रूप का वर्णन करने में किया जाता है।

आजकल के दौर में अंतर्राष्ट्रीय सार्वभौमिकता को दर्शाने के लिए ‘वैश्विक’ शब्द का प्रयोग होता है, और प्रत्येक स्थानीय वस्तु, विचार, उत्पाद, कला, वस्त्र, खाद्य पदार्थ इत्यादि को अंतर्राष्ट्रीय पटल पर प्रचारित करने की प्रक्रिया को वैश्वीकरण कहा जाता है। भूमंडलीकरण इसी का समानार्थी शब्द है। वैश्विक विज्ञान और तकनीकी विकास ने आज हमें एक दूसरे के इतना नजदीक ला खड़ा कर दिया है कि विश्व के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटना का केवल उस स्थान विशेष को प्रभावित करती है बल्कि सम्पूर्ण विश्व भी उक्त घटना से अछूता नहीं रहता। सामान्यतः वैश्वीकरण का उद्देश्य विश्व स्तर पर सभी देशों के परस्पर आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व मानवीय सहयोग करना है। लेकिन वैश्वीकरण के इस दौर में सहयोग की तुलना में पूँजी, व्यवसाय, बाजार और उपभोक्तावाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गया है। अब मुफ्त में कोई जनसेवा नहीं है, अब हर चीज की कीमत चुकानी पड़ती है। याद करें पहले पानी पिलाना परोपकार था पुण्य का कार्य था, लेकिन अब यह बहुत बड़ा कारोबार बन चुका है। कवि कैलाश वाजपेयी वैश्वीकरण के दौर में फैले बाजारों का हवाला देते हुए लिखते हैं-

“शहर ही शहर पूरी पृथ्वी पर
तारों और पहियों पर
पंखों से जुड़े हुए
बाजार ही बाजार
पूरे शहर में”

वास्तविकता यह है कि वैश्वीकरण ने आज पूरी दुनिया को एक बड़े बाजार-शॉपिंग कॉम्प्लेक्स में परिवर्तित कर दिया है। इस चौतरफा बाजार में मानवता की रक्षा के बजाय वस्तुओं में अधिक निवेश किया गया है, जहाँ बेचो-खरीदो की भावना के साथ-साथ सभ्यता और संस्कृति को भी खरीद-फरोख्त की वस्तु बना दी गई है।

वैश्विक आत्मकेन्द्रित और उपभोक्तवादी संस्कृति का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर भी पड़ा है। हम जानते हैं कि भारतीय संस्कृति त्याग, कल्याण, सादगी, संतोष इत्यादि सुंदर मानवीय

भावनाओं के लिए जाने जाती रही है। 'संतोष परम धन है' उसका मूल मंत्र रहा है। संतोष और पर कल्याण की भावना से ही कबीरदास कहते हैं-

**“साई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु भी भूखा न जाए”**

लेकिन सादगी सम्पन्न यही भारतीय संस्कृति अब वैश्वीकरण के प्रभाव से ग्लैमराइज और उपभोक्तावादी संस्कृति का कायल हो गया है। जिस संस्कृति में पूजा-पाठ, उपासना, भक्ति इत्यादि दिखावे की वस्तु नहीं थी, अब उनका जोर-शोर से महिमा मंडन किया जाता है, उनका भौंडा प्रदर्शन किया जाने लगा है। इस संदर्भ में सुविख्यात अर्थशास्त्री गिरीश मिश्र लिखते हैं 'हमारे देश में उपभोक्तावाद को पैठ बनाने में काफी समय लगा है। राष्ट्रीय आंदोलन के मूल्यों तथा नेहरू-इंदिरा गांधी के शासनकाल के दौरान अपनाए गए विकास के मॉडल उसके पनपने और फैलने में बाधक रहीं। विदेशी वस्तुओं के देश में बेरोकटोक आने में अनगिनत कठिनाईयाँ रहीं। वर्ष 1991 में नवउदारवादी विचारधारा अपनाने के बाद विदेशी वस्तुओं का देश के बाजार में बेरोकटोक प्रवेश आरंभ हो गया। लोगों के जीवन मूल्य भी बदले और धनाढ्य वर्ग शान-शौकत से रहने और अपनी संपदा का प्रदर्शन करने लगे।

लेकिन यह भी सच है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने एक सीमा में भारत के वंचितों विशेषकर दलितों के सशक्तिकरण में संक्षिप्त योगदान दिया है, लेकिन उससे ज्यादा नुकसान भी किया है। क्योंकि वैश्वीकरण द्वारा पोषित आर्थिक उदारीकरण में सरकारों ने अपने जनकल्याणकारी योजनाओं को संकुचित किया है जिससे सबसे ज्यादा प्रभावित वंचित तबके के लोग होते हैं। वैश्वीकरण देश के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को कमजोर कर रहा है उदाहरण के लिए वाराणसी में बनारसी साड़ी बनाने वाले बुनकर मुसलमान रहे हैं और उनको देश-विदेश में बेचने वाले हिन्दू। एक के बिना दूसरा कारोबार में नहीं रह सकता। यही कारण है कि वहाँ साम्प्रदायिकता कभी उग्र रूप में नहीं उभरी। यहाँ तक कि विश्वनाथ मंदिर के पास बनी मस्जिद को हटाने के साम्प्रदायिक प्रयास को किसी ने घास नहीं डाली। आज वैश्वीकरण के कारण चीनी बनारसी साड़ियों के धड़ल्ले से आने से असली बनारसी साड़ियों का धंधा कमजोर हो रहा है और सामाजिक जुड़ाव ढीला पड़ता जा रहा है। पैसे को लेकर परिवार के अंदर ही नहीं बल्कि पड़ोसियों के बीच भी तनाव बढ़ रहे हैं। संयुक्त परिवार अब इतिहास बन चुके हैं। परिवार की संपत्ति को लेकर उसके सदस्य आपस में लड़ने लगे हैं और एक दूसरे की हत्या करने लगे हैं। मर्यादा, सहनशीलता, सम्मान साज से गायब होने लगे हैं। इसी प्रकार पूँजीवाद की कारोबारी प्रवृत्ति से प्रदूषण की समस्या लगातार विकराल होती जा रही है। नदी, तालाब और कचरों से भरते जा रहे हैं। निजी कारोबारियों का मुख्य उद्देश्य अपनी लागत को घटाना है। उनको इसकी फिक्र नहीं होती कि हवा और पानी प्रदूषित होते जा रहे हैं। अपहरण, लूटपाट, बलात्कार जैसे जघन्य आपराधिक घटनाओं में लगातार वृद्धि हुई है। स्त्री को पूजने वाली भारतीय संस्कृति अब स्त्री को सिर्फ काम पिपासा शांत करने वाली उत्पाद के रूप में देख रही है। इस नव दृष्टि ने स्त्रियों की आजादी और सम्मान को खतरे में डाल दिया है। दलितों, आदिवासियों के कई फलदायी पेशों, को बड़े-बड़े कारोबारियों ने हाथिया कर उनको बाजारू उत्पाद में तब्दील कर अपनी शोहरत और सम्पत्ति में चार चाँद ईजाफा कर लिया है। यह निर्विवाद है वैश्वीकरण के फैलाव के साथ ही प्रत्येक स्तर पर भ्रष्टाचार बढ़ा है और अनेक संगीन आपराधिक कृत्यों में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की उदार संस्कृति कारोबार में लचीली है, लेकिन मेहनतकशों के लिए निरंकुश है। जो भारतीय संस्कृति अपनी सहिष्णुता के लिए जानी जाती रही है यह अब पूँजीवादी संस्कृति के हाथों में जाकर असहिष्णु हो रही है। धैर्य रखने आलोचना सहने जैसे मूल्य समाज से विलुप्त होते जा रहे हैं, दूसरों की या जरूरतमंद की भलाई के लिए अपनी सुविधाओं और हितों का परित्याग और बलिदान करना दूर की बात हो गई है। अब 'हम' की जगह 'मैं' ने ले लिया है जो भारतीय संस्कृति 'हम' की भावना से संचालित होती थी वह अब 'मैं' में सिमट कर रह गई है। सामाजिकता और सामाजीकरण की जगह व्यक्ति और व्यक्तिवाद का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। समाज में सामूहिकता की जगह साम्प्रदायिकता ने ले लिया है। जरा याद करें आज से बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व के दौर को जिसमें गाँव से कस्बों तक के लोग कितनी जीवंतता से मिलते थे। शहरों और गाँवों में खाई अपेक्षाकृत कम थी, जो कि अब बेतहताशा बढ़ रही है। गाँवों का विकास रूक गया है और निरंतर शहरीकरण जारी है। एक तरह से देहाती संस्कृति और शहरी संस्कृति के मूल्य बोध भिन्न होते जा रहे हैं।

जहाँ तक वैश्वीकरण की बात है इसने दुनिया समेत भारत को जबरदस्त ढंग से प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के पोषक शक्तिशाली संस्कृतियाँ, छोटी संस्कृतियों को निगलती जा रही हैं जिसके कारण स्थानीय पहचान, उद्योग, कलाएँ इत्यादि संकट में हैं, और यदि इनका बाजारीकरण हुआ है तो उसका लाभ कुछ विशेष तबके को मिलता है। आज वैश्विक बाजार अपने लाभ के लिए स्थानीय संस्कृति का दोहन किसी भी स्तर तक कर सकता है। मसलन जो त्योहार और पर्व, परिवार के अंदर घर के अंदर मनाये जाते थे अब उनको आत्म प्रदर्शन का जरिया बना दिया है। भारतीय संस्कृति में माँ, पिता, बेटा, बेटी, दादा, दादी, नाना, नानी जैसे प्रगाढ़ रिश्तों को सर्वोपरि रखा गया है और इनका सम्मान दैनिक जीवन की जरूरत माना गया है लेकिन वैश्वीकरण के बाजार ने रिश्तों को भी बाजार पर आश्रित कर दिया है। यानी आप 'मातृ दिवस' या 'पितृ दिवस' पर बाजार से तोहफा खरीदकर या रेस्टोरेंट में जाकर, सम्मान करें, तभी यह प्राकृतिक रिश्ते जिंदा रह पायेंगे। बाजार ऐसा भ्रम पैदा कर रहा है। वास्तव में भारतीय संस्कृति तो बाजार द्वारा निर्मित संस्कृति से बाहर थी, लेकिन अब वह भी बाजार की संस्कृति के मूल्यों को अपना ले लगी है। कुछ लोग इसको आधुनिकता और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों पर खरा नहीं उतरता जो भी हो इतना सत्य है कि वैश्वीकरण ने भारतीय संस्कृति के साझे मानवीय मूल्यों को बदलने का प्रयास किया है जिसके कारण क्षणिक खुशी तो प्राप्त होती है लेकिन व्यक्ति की समस्त निजता और स्वतंत्रता बाजार के हाथों में स्थानांतरित हो जाती है। इस तरह व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह भौतिक रूप से स्वतंत्र रहते हुए भी मानसिक गुलामी में चला जाता है। कुल मिलाकर वैश्वीकरण के विविध प्रयासों का भारतीय संस्कृति पर प्रभावित करने वाले कारकों का आयात और निवेश जारी है जिससे एक नई उपभोक्तावादी संस्कृति अस्तित्व में आ रही है।

....

संपर्क-सूत्र :- एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007. मो:9810526252

शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में व्यंग्य

- पुरुषोत्तम कुंदे

शमशेर बहादुर सिंह 'दूसरे सप्तक' के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में शमशेर बहादुर सिंह ने उत्तर छायावादी युग में दस्तक दी है। शमशेर एक ऐसे कवि हैं जो किसी भी निश्चित 'वाद' या विचारधारा से आबद्ध नहीं है। अतः छायावादी प्रवृत्तियों से लेकर नई कविता तक की अनेक विशेषताएँ उनके काव्य में लक्षित होती हैं। काल से होड़ लेता यह कवि अनेक कारणों से चर्चा बनाम विवादों में रहा है। कभी उनकी दुरूह-शैली की चर्चा हुई तो कभी बिंबधर्मिता की। शमशेर ने भाव एवं काव्य शिल्प को अधिक गहराई से अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य का प्रयोग किया है।

वस्तुतः व्यंग्य का प्रयोग भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही होता रहा है। यह प्रयोग तब हास-परिहास के रूप में हुआ है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही व्यंग्य का सफल प्रयोग हुआ है। कोई भी रचनाकार व्यंग्य के द्वारा न सिर्फ समसामयिक विसंगति को दर्शाता है बल्कि अपना प्रतिरोध भी दर्ज करता है। अतः रचनाकार के लिए व्यंग्य किसी औजार से कम नहीं है। अपने परिवेश के साथ प्रतिबद्ध कोई भी रचनाकार समसामयिक विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से ही प्रस्तुत कर सकता है। चूँकि 'व्यंग्य' एक साहित्यिक अवधारणा है। 'व्यंग्य' शब्द अंग्रेजी 'Satire' शब्द के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'व्यंग्य' शब्द 'वि' उपसर्ग एवं 'ण्यत्' प्रत्यय को 'अज्ज' धातु लगाने से बनता है हिन्दी मंजुषा में इसके जितने भी अर्थ उपलब्ध हैं वे शब्द शक्तियों से जुड़े हैं।¹

वास्तव में व्यंग्य का संबंध 'व्यंजना' शब्दशक्ति के साथ है। समकालीन संदर्भ पर प्रहार करने के लिए जब सहज, सरल भाषा का प्रभाव क्षीण होने लगता है तब व्यंग्य की चोट बहुत ही सार्थक सिद्ध होती है। व्यंग्य की परिभाषा गढ़ते हुए व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई लिखते हैं- "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंड का पर्दाफाश करता है।"²

परसाई जी का यह कथन संत कबीर के द्वारा कही बात 'निंदक नियरे राखिये' के साथ समानता दर्शाता है। अतः व्यंग्य न सिर्फ जीवन के क्षेत्र में व्याप्त है बल्कि साहित्य और आलोचना का क्षेत्र भी इससे लबरेज है। शमशेर की कविता में व्यंग्य की विविध घटाएँ मौजूद हैं। इसका कारण है शमशेर का विविध विचारधाराओं से जुड़ना। शमशेर पर पाश्चात्य अनेक कवियों का प्रभाव लक्षित होता है। साथ ही उर्दू की नज़ाकत भी उनकी काव्य शैली को सरस बनाती है। वस्तुतः जीवन के अनुभव जितने अधिक जटिल बनते हैं उतनी ही अभिव्यक्ति भी संश्लिष्ट रूप धारण कर लेती

है। शमशेर के साथ यह बात पूर्णतः लागू हो जाती है। आज़ादी के बाद शमशेर की कविता नया रूप अपनाती है। यह मोड़ है व्यंग्य का। आज़ादी को लेकर भारतीय जनमानस में सुनहरे सपने सजे हुए थे। ऐसे में लोकतंत्र के तथाकथित पहरेदारों ने महज नारेबाजी के अलावा कुछ भी नहीं किया। शमशेर की पैनी दृष्टि से ये विसंगतियाँ भला कैसे नजर अंदाज हो सकती हैं? शमशेर कविता में व्यंग्य बाणों का आधार लेकर लिखते हैं-

“सरकारें पलटती हैं

जहाँ हम दर्द से करवट बदलते हैं

हमारे अपने नेता भूल जाते हैं हमें जब,

भूल जाता है जमाना भी उन्हें,

हम भूल जाते हैं उन्हें खुद और तब,

इन्कलाब आता है उनके दौर को गुम करने।”³

पैरा में शमशेर इस बात पर गहरा क्षोभ जताते हैं कि सरकारें बदलती हैं लेकिन जनता की हालत में कोई परिवर्तन या सुधार नहीं है। भारत में आज़ादी के बाद लोकतंत्र की स्थापना हुई। लेकिन लोकतंत्र भी चंद लोगों के हाथों की कठपुतली बनकर ही रह गया है। वास्तव में शमशेर का व्यक्तित्व अंतर्मुखी है। इसलिए उनकी व्यंग्य की चोट तीव्र न होकर सोचनीय है। यह उल्लेखनीय है कि उनकी कविता में व्यंग्य महज समस्याओं को चित्रित करने के लिए नहीं है बल्कि समाधान खोजने के लिए भी प्रेरणा देता है। कवि युगीन संदर्भों में भारत-चीन के बिगड़े हुए संबंध को लेकर लिखता है-

“भारत के सरल हृदय के

मैत्री भाव पर

घूँसा मारने वालों,

तुम शायद, शायद मानव जाति के नहीं, क्यों?”⁴

कवि का मानना है कि भारत ने हमेशा पड़ोसी देशों के प्रति मित्रता और सौहार्द बनाए रखा है। शमशेर ने चीन की रणनीति पर तीव्र प्रहार किया है। दरअसल साठ के दशक के हालातों को अभिव्यक्त कर रहा है। शमशेर ने चीन की रणनीति पर तीव्र प्रहार किया है। मित्रता का स्वांग करने में चीन की भूमिका हमेशा अग्रणी रही है। चूँकि इसमें अन्य देश भी पीछे नहीं है। इसलिए पड़ोसी देशों का यह दोगलापन कवि को अखरता है। तभी शमशेर सरीखा संवेदनशील रचनाकार ‘घूँसा मारने वाली’ बात कर रहा है। उद्धृत पक्तियाँ आज के समय में भी सार्थक प्रतीत होती हैं। शमशेर की व्यंग्य चेतना का अन्य एक महत्वपूर्ण पहलू है भारतीय संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन। तथाकथित मान्यताओं और सभ्यता की आड़ में जो गलत धारणाएँ समाज में प्रचलित हो रही हैं, कवि शमशेर व्यंग्य के माध्यम से प्रतिरोध जताता है-

**“अंधकार-संकीर्ण सांप्रदायिक जताता है-
मृत्यु खेलती सट्टा जहाँ मनुज प्राणों से-
मुक्त आज गुण्डों का राज।
डूब रही है जहाँ सभ्य भारत की लाजा।”⁵**

जाहिर है कि कवि के मतानुसार अनेक लोक समाज में अमानवीय घटनाओं को बढ़ावा दे रहे हैं। समाज में संप्रदाय और धर्म के नाम पर लड़नेवालों की कमी नहीं है। परिणामतः अनेक विकृतियाँ समाज में पनपती हैं। निःसंदेह इससे गुण्डाराज ही बढ़ता है। कवि की दृष्टि से ऐसे हालात किसी भी देश के लिए शर्म की बात है। शमशेर मूलतः उर्दू और हिन्दी के दोआब कवि हैं। चूँकि उन्होंने उर्दू से ही लिखना आरंभ किया है। अतः कवि ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का पुरजोर समर्थन किया है। दोनों समुदायों में मजहब के नाम पर जब विवाद शुरू होता है तब कवि आहत होकर व्यंग्य करता है-

**“है आसमाने-हिन्द के तारे दोनों।
है सरजमीने-पाक के प्यारे दोनों।
यह किसकी नज़र खाये जाती है उन्हें।
आपस ही में लड़-लड़ के हारे दोनों।”⁶**

शमशेर इस बात को लेकर अफसोस जताते हैं कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों महज मजहब के नाम पर आपस में लड़ रहे हैं। यद्यपि कवि यह बात साठ-सत्तर के दशक में कर रहा है। लेकिन जब से हिन्दुस्तान का भारत और पाक के रूप में विभाजन हुआ है, तब से यह घृणा भाव पैदा हुआ है। चूँकि आज भी यह कम नहीं हुआ है। वास्तव में ऐसी गुत्थियाँ राजनेताओं की उपज है। उन्होंने इसे कभी सुलझाने का प्रयास नहीं किया है। दरअसल उनकी राजनीति की बुनियाद ऐसे जुल्मों पर टिकी है। शमशेर व्यंग्य का प्रहार करते हुए लिखते हैं-

**“खिलाओ हजारों, तो लाखों कमाओ।
और क्या, हाँ, फिर
सट्टे-फस्ट क्लास होटेल
ठेके या कि एलेक्शन में पूंजी लगाओ,
और दो-बड़े-बड़ों के बीच में बैठकर....
शान से मूछों पर तावा।
हाँ, कानी उंगली ये अपनी गांधी-टोपी
नचाये, नचाये, नचाये जाओ।”⁷**

स्पष्ट है कि शमशेर ने राजनीतिक पोल खोल दी है। चुनाव जब नजदीक होते हैं तब राजनेता प्रलोभन दिखाते हैं। ‘खिलाओ हजारों, तो लाखों कमाओ’ वाली बात व्यंग्य का चरम रूप

है। नेतागण चुनाव जीतने पर जनता को गुमराह कर अवैध धंधे चलाने के लिए बल देते हैं। भ्रष्टाचार के द्वारा जितनी पूंजी ऐंठती हैं उसे सट्टे-होटल व्यवसाय में निवेशित करते हैं। शमशेर ने गांधी टोपी का उल्लेख किया है। असल में कवि इंगित करता है कि नेतागण गांधी टोपी की दुरुपयोग कर रहे हैं। इस बात को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता कि आज़ादी की लड़ाई में गांधी टोपी ने अहम् भूमिका निभायी है। राजनेताओं के द्वारा इसी का गलत इस्तेमाल किया जा रहा है। शमशेर का व्यंग्य तब अधिक नुकीला बनता है, जब कवि उर्दू की तर्ज पर व्यंग्य का प्रयोग करता है। राजनेताओं के द्वारा आम जनता की होनेवाली लूट को शमशेर व्यंग्य के माध्यम से यूनं दिखाते हैं-

**“राह तो एक थी हम दोनों की
आप किधर से आए-गए।
हम जो लूट गए पिट गए,
आप जो राजभवन में पाए गए।”⁸**

सचमुच जब तक भारत आज़ाद नहीं हुआ था, तब तक आज़ादी का आंदोलन एक ही उद्देश्य के आधार पर लड़ा जा रहा था। किंतु आज़ादी के बाद लोकतंत्र गठित हुआ और राजनीति में झूठे नारे एवं घोषणाओं की गूंज अधिक गूंजने लगी। कोई भी नेता जनता से ही चुनकर आता है। लेकिन सत्ता और अधिकार मिलने पर नेता समाज से कन्नी काट लेते हैं। सामान्य लोगों को दरकिनार कर देते हैं। अब सवाल यह है कि नेता लूट कैसे कर रहे हैं? तो यह लूट है योजनाओं की। आम लोगों को केंद्र में रखकर जो योजनाएँ बनायी गई हैं, उनका कार्यान्वयन नहीं होता है। और सारा पैसा भ्रष्ट नेताजी अपनी ओर मोड़ लेते हैं। इसलिए शमशेर सरीखा प्रतिबद्ध कवि व्यंग्य द्वारा प्रहार करता है। राजनेताओं को राजभवन मिला लेकिन आम जनता की हमेशा ही शिकस्त रही है। इसी कारण कवि आहत है। कवि का मानना है कि सर्वहारा वर्ग हमेशा ही संघर्ष करता रहा है। उसका यह संघर्ष सुविधाओं के अभाव के कारण है। शमशेर इन्हीं विसंगतियों पर प्रहार करते हैं।

दरअसल शमशेर की व्यंग्य चेतना गुदगुदाती नहीं है बल्कि वह मार्मिक चोट करती है, तभी वह सोचनीय है। कवि व्यंग्य का प्रयोग न सिर्फ समसामयिक विसंगतियों पर वाज़ाघात करने के लिए करता है बल्कि काव्यभाषा में सौंदर्य वृद्धि करने के लिए भी व्यंग्य को अपनाता है। यही कारण है उनकी कविता में भावों, भंगिमाओं का सुंदर प्रयोग लक्षित होता है। शमशेर की व्यंग्य चेतना महज राजनीति तक ही सीमित नहीं है बल्कि लेखक, प्रकाशक भी इनके व्यंग्य बाणों से बच नहीं पाये हैं। बानगी के तौर पर कुछ पंक्तियाँ गौरतलब है-

**“लेखक (और लेखक ही क्यों) एक साँचा है,
इस साँचे में आप फिट हो जाइए।
हर एक के पास एक साँचा है।
राजनीतिज्ञ, प्रकाशन, शिक्षा संस्थानों के
गुरु लोगों के पास....यह लॉबी, वो लॉबी।”⁹**

कवि शमशेर हमेशा ही खेमेबाजी के खिलाफ रहे हैं। चूँकि सभी विचारधाराओं का समन्वय उनकी कविता में दिखायी देता है। समाज के जिन क्षेत्रों में गुटबाजी होती है, कवि उसके खिलाफ आवाज बुलंद करता है। जाति, धर्म, लिंग, संप्रदाय के आधार पर गुटबाजी आरंभ से ही चली आ रही है। लेकिन सोचनीय पहलू यह है कि लेखक, प्रकाशक, राजनीतिज्ञ और अध्यापकों की भी खेमेबाजी हो रही है। शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र बचा हो जिसमें खेमेबाजी का अभाव है। शमशेर उस परंपरागत साँचे का विरोध करते हैं। और विशिष्ट तत्वों के योग से बना है। हालांकि शमशेर यह बात बाजार और उपभोक्तावाद की आहट सुनकर कर रहे हैं। बाजारवाद के कारण कुछ लेखक ‘प्रकाशनवादी’ हो गए हैं। कुछ प्रकाशक महज ‘रायल्टीवादी’ हो रहे हैं। यद्यपि यहां ‘वाद’ शब्द का प्रयोग जानबूझकर करना पड़ रहा है। यही बात अध्यापकों की खेमेबाजी में देखी जा सकती है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा के केंद्र तक यही प्रवृत्ति विद्यमान है। कवि का प्रतिरोध ऐसी प्रवृत्ति के खिलाफ है।

चूँकि शमशेर उर्दू और हिन्दी के दोआब कवि हैं। उनकी कविता में व्यंग्य के माध्यम से चोट करनी की जो क्षमता है, वही बात उनकी गज़लों में भी लक्षित होती है। वस्तुतः भारत में प्राचीन काल से ही हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य रहा है। लेकिन अंग्रेज जब भारत में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम को आपस में झगड़े करने के लिए भड़काया। यहाँ तक कि उन्हें मजबूर भी किया है। अंग्रेजों द्वारा रचा गया यह षडयंत्र आज़ादी के अंतिम पड़ाव पर अधिक सफल हुआ है। आज़ादी के बाद भी विध्वंस और घृणा की ज्वाला कम नहीं हुई है। शमशेर की शायरी में इसका मार्मिक वर्णन है-

**“जो धर्मों के अखाड़े हैं, उन्हें लड़वा दिया गए।
जरूरत क्या कि हिन्दुस्तान पर हमला किया जाए।”¹⁰**

निश्चित रूप से शमशेर इस बात से रूबरू हैं कि हिन्दुस्तान की असल में क्या कमजोरी है। इसलिए उन्होंने तर्क दिया कि भारत को बाहरी दुश्मनों की अपेक्षा अपने ही देश में पनपती विकृतियों से धोखा है। अतः धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के आधार पर जो गुट बनते हैं, उसी से देश खोखला बनता है। शमशेर अपनी पैनी दृष्टि से भंडाफोड़ करते हैं। वास्तव में कविता और व्यंग्य का गहरा अंतःसंबंध है। यह संबंध अभिव्यक्ति के स्तर पर है। इसलिए शमशेर कविता में व्यंग्य का प्रयोग औजार के रूप में करते हैं।

अंत में कह सकते हैं कि शमशेर बहादुर सिंह की व्यंग्य चेतना में युगीन संवेदना का स्वर ध्वनित हुआ है। कवि ने समसामयिक राजनीतिक, सांप्रदायिक विसंगतियों को शिद्दत से उजागर किया है। शमशेर की व्यंग्य चेतना में तीव्र प्रहार की अपेक्षा चिंतन की चोट अधिक गहरी है। उनके व्यंग्य बाण पाठक को गुदगुदाते नहीं है अपितु सोचने के लिए बाध्य करते हैं। यही कारण है कि शमशेर अपने समकालीन कवियों में सबसे अलग पहचान बनाये हुए हैं।

...

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र-मलय, पृ.09
- 2.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी भाषा साहित्य-डॉ.सुरेश माहेश्वरी, पृ.20
- 3.कुछ और कविताएँ-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.90
- 4.चुका भी हूँ नहीं मैं-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.90
- 5.उदिता अभिव्यक्ति का संघर्ष, शमशेर बहादुर सिंह, पृ.52
- 6.बात बोलेगी-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.52
- 7.बात बोलेगी-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.92
- 8.काल तुझसे होड़ है मेरी-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.41
- 9.कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.47
- 10.सुकून की तलाश-शमशेर बहादुर सिंह, पृ.71

...

संपर्क-सूत्र :- सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, न्यू आर्ट्स,
कॉमर्स एण्ड साइन्स कॉलेज, महाराष्ट्र-414502

तथा असोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला। मो: 0955254284

हिन्दी आलोचना में भारतेंदु का स्थान एवं योगदान

- बेंद्रे बसवेश्वर नागोराव

हिन्दी साहित्य में भारतेंदु युग हिन्दी भाषा एवं साहित्य को परिष्कृत एवं समृद्ध करने का कार्य करता है। इस युग में अनेक विधाओं का सूत्रपात हुआ। इसके कई कारण हैं किन्तु प्रमुख कारण के रूप में हम 'गद्य' के विकास को देख सकते हैं। हिन्दी गद्य का विकास इसी समय में होता है और इस कार्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र का अपना विशिष्ट योगदान है।

हिन्दी गद्य के निर्माण के समय ही इस हिन्दी भाषा (खड़ीबोली) की काफी आलोचना हुई। कई लोगों ने इसे कई संज्ञाएँ दी, जिसको उल्लेखित करना यहाँ जरूरी नहीं है। इसके रूप निर्धारण में अनेक मत-मतान्तर दिखाई देते हैं। इन सबसे बाहर निकलते हुए भारतेंदु युग में ही हिन्दी अपना एक रूप ग्रहण कर रही थी। भारतेंदु ने जिन दिनों अपना साहित्यिक कर्म आरम्भ किया, उन दिनों हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अनेकानेक तत्व संलग्न थे। तब हिन्दी के अनेक रूप प्रचलित थे। यही समय था जब हिन्दी पत्रकारिता अपने उद्भव एवं विकास की अवस्था से गुजर रही थी। पत्रकारिता ने भी हिन्दी गद्य-रूप को निखारने का महत्वपूर्ण कार्य किया। कई आलोचक इसी गद्य के विकास को हिन्दी आलोचना के जन्म का कारण मानते हैं। लेकिन डॉ. अभिषेक रौशन लिखते हैं "हिन्दी आलोचना के जन्म के बारे में यह धारणा है कि गद्य हिन्दी आलोचना के विकास में सहायक हुआ। पर यह मूल कारण नहीं है। मूल कारण साहित्य और समाज का बदला हुआ रिश्ता है।"¹ इनके इस वक्तव्य के पश्चात भी हम हिन्दी गद्य के विकास का हिन्दी आलोचना के विकास में बिल्कुल योगदान नहीं था यह कहने की दुष्टता नहीं कर सकते।

हिन्दी आलोचना के आरम्भ को लेकर कई आलोचकों ने चिंतन किया। भगवत्स्वरूप मिश्र जी ने लिखा है कि "बौद्धिक जाग्रति और पाश्चयात्य अनुकरण के वातावरण में आधुनिक समीक्षा पद्धति का जन्म और विकास हुआ है।"² यह वक्तव्य सत्य होकर भी पूर्ण सत्य नहीं है। इसमें हिन्दी आलोचना के विकास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को नकारा नहीं जा सकता। विश्वनाथ त्रिपाठी इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को पहचानते हुए लिखते हैं, "आलोचना उन विधाओं में से है जो पश्चिमी साहित्य की नक़ल पर नहीं बल्कि अपने साहित्य को समझाने-बुझाने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यकता के कारण जन्मी और विकसित हुई है।"³ अतः इन सभी बातों से यह कह सकते हैं कि भारतेंदु युगीन साहित्य में नए-नए विधाओं का सूत्रपात हुआ। जिसके पीछे हिन्दी के गद्य के रूप के विकास का तथा पश्चिमी विचारों का प्रभाव है। इन प्रभावों के अलावा भी यहाँ के रचनाकारों का समाज से जुड़ने का विचार तथा साहित्य तथा समाज के संबंध को समझने की प्रक्रिया का अंग मानने के वैचारिक बदलाव का भी आलोचना के आरम्भ में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

भारतेंदु के आलोचना कर्म को रेखांकित करने से पूर्व हिन्दी आलोचना का आरम्भ कर्ता या हिन्दी आलोचना का आरम्भ भारतेंदु से माननेवाले आलोचकों के चिंतन को देखना जरूरी हो

जाता है, क्योंकि उन्होंने हिन्दी साहित्य एवं आलोचना को दरबार की दुनिया से बाहर निकालकर उसे जनता के सम्मुख रखने का कार्य किया। अतः उनके इस कार्य में प्रेमघन एवं बालकृष्ण भट्ट आदि ने उनका साथ दिया। कई आलोचकों ने भारतेन्दु के आलोचना कर्म का महत्त्व समझते हुए उन्हें हिन्दी आलोचना का सूत्रपात कर्ता माना। रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी गद्य: विन्यास और विकास' में लिखते हैं कि "हिन्दी आलोचना का उदय कई अन्य गद्य रूपों की भांति भारतेन्दु के लेखन कार्य से ही होता है। उनका निबंध 'नाटक' (1883) एक साथ ही सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक आलोचना का सूत्रपात करता है।"⁴ इनके अलावा महावीर प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं "आधुनिक काल में जो कुछ उन्नति हिन्दी की हुई उसके विशेष कारण पंडित बंशीधर, बाबु हरिश्चंद्र, राजा शिवप्रसाद और प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि प्रसिद्ध लेखक हैं। जीवन चरित, नाटक, समालोचना, मासिक पुस्तक और समाचार इत्यादि लिखना बाबु हरिश्चंद्र ही ने हम सबको सिखलाया। जो कुछ इस समय दिख पड़ता है, इसका सूत्रपात प्रायः उन्हीं ने किया।"⁵ इन सभी विद्वानों की मान्यताओं को 'भारतेन्दु को ही सबकुछ का श्रेय देने की ललक' कहनेवाले वर्तमान आलोचक अभिषेक रौशन की पुस्तक 'बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिन्दी आलोचना का आरंभ' में बालकृष्ण भट्ट को ही 'हिन्दी आलोचना के आरम्भ का श्रेय देने की ललक' दिखाई देती है। क्योंकि भारतेन्दु का निबंध 'नाटक एवं दृश्यकाव्य' ई.सं.1883 में ही प्रकाशित हुआ। जब बालकृष्ण भट्ट के 'सच्ची समालोचना' का प्रकाशन 1886 में हुआ था। इस कालगत तर्क को मात करने के लिए, वे आधुनिक आलोचना सूत्रों की चर्चा करते हैं लेकिन इसी पुस्तक में 'भारतेन्दुयुगीन आलोचना और बालकृष्ण भट्ट' अध्याय में भारतेन्दु के निबंध 'नाटक एवं दृश्यकाव्य' में छिपे आधुनिक आलोचना के सूत्रों को वे ही स्पष्ट करते हैं। इसी में आगे वे प्रेमघन के संबंध में भी ऐसा ही लिखा है। अतः हमें लगता है कि उन्होंने अपनी पुस्तक के शीर्षक की सार्थकता हेतु उक्त प्रयास किया है। लेकिन इतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि भारतेन्दु ने 'नाटक' निबंध के माध्यम से हिन्दी आलोचना के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वैसे तो भारतेन्दु के आलोचना कर्म को कमतर मानने के पीछे उनके लिखे समीक्षात्मक निबंधों की कम संख्या कारणीभूत प्रतीत होती है। उन्होंने आलोचना का सूत्रपात तो किया लेकिन उसका विकास करने में ज्यादा भूमिका निभा न सके। इसका कारण उनकी अल्पायु जीवन भी रहा है।

भारतेन्दु के आलोचनात्मक लेखन में बहुत कुछ ऐसा भी है जिसका हम सीधा साहित्यिक आलोचना से संबंध जोड़ भी नहीं सकते। वैसे उन्होंने समग्र साहित्यिक कर्म में आलोचना पर बहुत कम ध्यान दिया। वे यदि चाहते तो हिन्दी आलोचना के लिए बहुत कुछ कर सकते थे यह उनका निबंध 'नाटक' को देखने से पता चलता है। लेकिन उनका मुख्य लक्ष्य साहित्य को समाज के समीप ले जाना था और उन्होंने वह कार्य बखूबी निभाया। 'आलोचना' यह साहित्य का एक 'अंग' है। जो सामान्य जन के लिए कितना उपयोगी है? इसको पढ़नेवाले कौन है? तत्कालीन समय को ध्यान में रखकर इस पर विचार करने से भिन्न अर्थ ध्वनित होता है, जिसको उल्लेखित करना यहाँ आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

भारतेन्दु ने जितनी आलोचना की उसमें कुछ सैद्धांतिक एवं कुछ व्यवहारिक बिंदु परिलक्षित होते हैं। उसको अलग-अलग देखने की बजाए यहां उसकी एकता को ही देखना प्रासंगिक होगा

क्योंकि भारतेंदु के आलोचनात्मक निबंधों को शुद्ध सैद्धांतिक और शुद्ध व्यवहारिक आलोचना प्रकार में विभाजित करना अन्याय होगा। अतः उनके आलोचना कर्म में 'नाटक एवं दृश्यकाव्य' सर्वाधिक प्रमुख है। इसके अलावा 'जातीय संगीत', 'हिन्दी कविता', 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन', 'ईशु खृष्ट और इश कृष्ण', 'रसरत्नाकर' आदि को हम देख सकते हैं। इसके अलावा भी कई टिप्पणियाँ उन्होंने की हैं। वास्तव में भारतेंदु जब आलोचना कर रहे थे तब हिन्दी आलोचना अपने पहले पायदान पर थी। पहले पायदान पर कहने का मतलब है आधुनिक दृष्टिकोण से इस युग ने सोचना प्रारंभ किया था। उसमें अनेक कमियाँ होना स्वाभाविक था। हमें यहाँ कमियों से ज्यादा उनके योगदान पर बात करनी है। उनके कुछ महत्वपूर्ण निबंधों को विस्तार से तथा अन्य निबंधों को संक्षेप में यहाँ देखने का प्रयास करेंगे।

'नाटक अथवा दृश्यकाव्य' निबंध 1883 में प्रकाशित हुआ। आज तक जितने हिन्दी आलोचना के इतिहास लिखे गए हैं, उसमें इस निबंध की चर्चा या महत्व को उद्धृत किया गया। बिना उसके वह इतिहास अधूरा माना जाएगा। इसी निबंध से हिन्दी आलोचना का प्रारम्भ माना गया है। मार्क्सवादी आलोचक रामविलास शर्मा के अनुसार "नाटक पर विस्तृत निबंध लिखकर उन्होंने (भारतेंदु) हिन्दी में तुलनात्मक और ऐतिहासिक समालोचना की नींव डाली।"⁶

इस निबंध में नाटक के बारे में बात करने के क्रम में भारतेंदु का साहित्य के प्रति दृष्टिकोण भी व्यक्त होता है। वे लिखते हैं यदि किसी को नाटक लिखने की इच्छा हो तो उसे नाटक किसे कहते यह पहले जान लेना चाहिए। नाटककार को सूक्ष्म रूप से भावनात्मक रूप में मनुष्य के प्रकृति की आलोचना करनी चाहिए। यह बात भले ही नाटक के सन्दर्भ में कही हो लेकिन उसका सम्बन्ध साहित्य से भी है। भारतेंदु की दृष्टि लोकवादी थी। वे स्वीकार करते हैं कि उत्कृष्ट साहित्य के लिए लोक के साथ सम्पृक्त होना अत्यंत आवश्यक है। उनके कहने का अर्थ यह भी हो सकता है कि प्रत्येक लेखक को सबसे पहले अपने समाज से जुड़ना चाहिए। वे लिखते हैं "मानव प्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे। तथा नाना प्रकार के ग्रन्थ का अध्ययन करे, वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करे। यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्य लोगों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदय स्वभाव भी उसी प्रकार अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय बाह्य कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उस के अनुशीलन में प्रवृत्ति होना होता है। और किसी उपकरण द्वारा नाटक लिखना झ्रख मारना है।"⁷ अतः उनके निबंध शब्द के अर्थ को व्यापक रूप में लिया जाए, जिससे नए आलोचनात्मक बिंदु हमें परिलक्षित होंगे।

नाटक लेखन को लेकर उन्होंने कई बातें कही हैं। "वर्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है इससे प्राचीन मत अवलंब करके नाटक आदि दृश्यकाव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता। ... जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और देशीय रीति नीति का प्रवाह जिस रूप में चलता रहें, उस समय में उक्त सहृदय गण का अंतःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है।"⁸ इसमें दो बातें हैं पहली बात यह कि भारतेंदु

स्वीकार करते हैं कि पूर्ववर्ती मत का अवलम्ब करना अब उचित नहीं है। अतः भारतेन्दु आधुनिकता तथा आधुनिकता के साथ भारत में प्रविष्ट करने वाले सभी तत्वों से अवगत थे। वे साहित्य को 'सामाजिक लोगों की रूचि' के अनुरूप होने की मांग करते हैं। दूसरी बात वे कहते हैं कि साहित्य 'सहृदय गण के अंतःकरण' की वृत्ति और 'सामाजिक रीति पद्धति' आदि विषयों की समीचीन समालोचना करके लिखा जाये। भारतेन्दु का यह दृष्टिकोण आधुनिक है। वे नाटक में हमेशा स्वाभाविकता की मांग करते हैं। भारतेन्दु ने उपर्युक्त जितने भी नाटक के गुण बताए हैं सभी तत्कालीन समय की मांगे थीं, जिसको साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करने का कार्य भारतेन्दु अपने निबंध में करते हैं। यह मांग आलोचना में पहली बार की जा रही थी।

भारतेन्दु के अनुसार नाटक में पात्रानुकूल संवाद, "वेश और वाणी दोनों ही पात्र की योग्यतानुसार होनी चाहिए"⁹। इस आधुनिक आलोचक के अनुसार नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य होते हैं शृंगार, हास्य, कौतुक, समाज-संस्कार, देशवत्सलता। भारतेन्दु के आलोचना दृष्टि पर तत्कालीन समाज-सुधार तथा राष्ट्र भावना का प्रभाव है। यह प्रभाव रहना ही प्रमाण है कि भारतेन्दु अपने समय के समाज एवं साहित्य की चिंता को एक करना चाहते थे। इन सबके अलावा भारतेन्दु ने प्रस्तुत नाटक निबंध में नाट्य रस, नाटक के प्रकार, पाश्यात्य नाटकों का इतिहास आदि पर बात की जो हिन्दी आलोचना के लिए सर्वथा नवीन थी। वे लिखते हैं "आजकल की सभ्यता के अनुसार नाटक रचना में उद्देश्य फल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है। ... अर्थात् नाटक पढ़ने या देखने से कोई शिक्षा मिले।"¹⁰ भारतेन्दु साहित्य से केवल मनोरंजन की मांग नहीं करते। वे साहित्य के माध्यम से समाज को उत्तम फल एवं शिक्षा मिलने की बात करते हैं। आलोचना के प्रारंभिक समय में इस तरह की बातें स्पष्ट करती हैं कि भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी साहित्य एवं आलोचना के अग्रदूत थे। रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं' में लिखते हैं "भारतेन्दु 'नाटक' नाम से निबंध में आलोचना के कुछ मूल सिद्धांत स्थिर किये हैं जो हमारे लिए बहुत ही मूल्यवान हैं। उनके अनुसार मनुष्य की वृत्तियाँ शाश्वत न होकर परिवर्तनशील हैं। परिवर्तित वृत्तियों को ध्यान में रखकर नाटक लिखना चाहिए। आधुनिक काल में देशप्रेम और समाज संस्कार के नाटक लिखे जाने चाहिए। साहित्य में अलौकिक विषयों की जगह लौकिक विषयों को जगह देनी चाहिए। पुराने नियमों को युग की आवश्यकताओं के अनुसार परखकर अपनाना चाहिए। नाटक लिखने के लिए समाज का व्यापक अनुभव होना बहुत जरूरी है।"¹¹ अतः भारतेन्दु के आलोचना कर्म में "नाटक अथवा दृश्यकाव्य" का सर्वाधिक महत्व है। या यूँ कहे कि उनके आलोचना दृष्टि को उद्घाटित करने के लिए बहुत हद तक कारगर है।

कविता पर भी भारतेन्दु विचार करते हैं। उन्होंने अपने निबंध 'हिन्दी कविता' में रीतिकालीन कविता पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया। इसमें वे लिखते हैं कि "इन कवियों का चित्त स्वाभावोक्ति पर तनिक भी नहीं जाता। केवल बड़े-बड़े शब्दाडम्बर करते थे। ...।"¹² इससे स्पष्ट पता चलता है कि भारतेन्दु सिर्फ नाटक ही नहीं कविता में भी स्वाभावोक्ति को महत्त्व देते हैं। इसी 'स्वाभावोक्ति के अभाव' के कारण उन्हें रीतिकालीन कविता प्रिय नहीं लगी। यदि उनके स्वाभावोक्ति की व्याख्या करनी हो तो हम वही उनकी नाटक के सन्दर्भ में दी गई व्याख्या को ही देख सकते हैं। जिसमें उन्होंने बताया था कि जनमानस के अंतःकरण को उद्घाटित करना ही

स्वाभाविक होता है। रीतिकालीन कविता पर विचार करते हुए उन्होंने आगे लिखा है कि “कविता में अत्युक्ति और निरा भाटपन न हो यों तो बिना कुछ कुछ नमक-मिर्च लगाए कविता होती ही नहीं।”¹³

इस निबंध के अलावा कविता के बारे में भारतेंदु की धारणा उनके निबंध ‘जातीय संगीत’ में उभरकर सामने आई है। इसमें एक ओर तो कविता को लोकगीतों से अप्रत्यक्ष रूप से जोड़ने का प्रयास किया तो दूसरी ओर कविता में संगीत की महत्ता को स्थापित करते हुए संगीत और कविता को जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्हें यह ज्ञात था कि सभ्य समाज में कविता उतनी जल्दी नहीं फैलती जितनी जल्दी ग्रामगीत और लोकगीत फैलते, क्योंकि उन गीतों में स्वभाविकता के साथ निश्चल वृत्ति भी होती है। वे लिखते हैं “सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्रामगीत शीघ्र फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव पड़ता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।”¹⁴ इस उद्धरण में हमें कुछ मुख्य बिंदु लक्षित होते हैं। पहला वे कहते हैं जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा। दूसरा जनसाधारण ग्रामगीत सर्वाधिक शीघ्र फैलते हैं। तीसरा लोगों में कविता संगीत द्वारा सुनाने पर ही लम्बे समय तक चित्त पर रह सकती है। इसके उदाहरण के रूप में हम आज भी ‘रामचरितमानस’ को देख सकते हैं। चौथा यह सब साधारण प्रचलित शिक्षा से नहीं होगा। इसको यदि विश्लेषित किया जाये तो लम्बा होगा फिर विस्तार से न जाते हुए इसको संक्षेप में बताने की कोशिश होगी। वे स्वीकार करते हैं कि जब तक साधारण जन को कोई कविता प्रभावित या आकर्षित नहीं करेगी तब तक कविता को व्यापकता प्राप्त नहीं होगी। कवियों को इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कविता में संगीत एवं ग्रामगीतों के तत्वों का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी आलोचना एवं साहित्य की दृष्टि से यह बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि हिन्दी की आरंभिक आलोचना ग्रामगीतों पर विचार करने लगी और ग्रामगीतों के महत्व को भी बड़े अच्छे से समझती थी। उन्होंने लिखा है, “गीत बहुत छोटे-छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बने वरंच गँवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवां, अब्दा, चैती होली, सांझी, लम्बे, लावणी, जौते के गीत, बिरहा चनैवी, गजल इत्यादि ग्रामगीतों में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुन्देलखण्डी, बिहार में बिहारी ऐसे जिन देशों में जिन भाषाओं का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें।”¹⁵ अतः उन्होंने सबसे पहले तो कविता को संगीत से जोड़ा, संगीत में ग्रामगीतों को श्रेष्ठ बताया और उनका भावनात्मक सम्बन्ध जनसाधारण से बताते हुए कवियों को ग्रामगीतों एवं संगीत शैली के उपयोग के लिए आह्वान किया। ग्रामगीतों की महत्ता को समझनेवाले भारतेंदु के समकालीन बालकृष्ण भट्ट भी प्रमुख थे। इन्होंने अपना निबंध ‘सच्ची कविता’ में इस पर विचार किया है। भारतेंदु एवं बालकृष्ण भट्ट की तुलना कर बालकृष्ण भट्ट को बड़े आलोचक सिद्ध करने के लिए अभिषेक रौशन अपनी पुस्तक में लिखते हैं “भारतेंदु ग्रामीण गीतों का असर कविता में लाना चाहते हैं इसका कारण जनसाधारण में कविता का प्रचार करना है और इसके माध्यम से उनकी चेतना बदलनी है। बालकृष्ण भट्ट का ग्रामगीतों की ओर झुकाव उसमें वास्तविकता एवं सच्चाई के कारण है, यहाँ कृत्रिमता नहीं है। कविता में ‘वास्तविक भावना’ का आना बहुत जरूरी है तभी वह ‘सच्ची कविता’ होगी। भारतेंदु का ध्यान ‘देश की उन्नति’

पर ज्यादा है और बालकृष्ण भट्ट का ध्यान साहित्य की उन्नति पर। इसलिए यह अंतर है।¹⁶ इसी में वे आगे निष्कर्ष देते हैं कि “भारतेंदु को जनता को संवारना है और बालकृष्ण भट्ट को कविता को, मूलभूत उद्देश्य एक है, पर यह अंतर इसीलिए है कि भारतेंदु मुख्यतः रचनाकार है और बालकृष्ण भट्ट मुख्यतः आलोचक।”¹⁷ प्रस्तुत लेखक के आलोचना दृष्टि के बारे में पहले ही कहा जा चुका है कि वे अपने पुस्तक के शीर्षक की सार्थकता एवं बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी आधुनिक आलोचना का आरम्भकर्ता मानने की ललक के चलते यह सब कहते हैं।

‘स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन’ नाम के निबंध में भारतेंदु ने दादु, नानक, कबीर आदि भक्त कवियों को देवताओं के लिबरल दल में रखा। जिससे अपने आप स्पष्ट होता है कि वे इन संतों की कविता एवं विचारधाराओं को उदार मानते थे। यह बात रामविलास शर्मा ने भी मान्य की। अतः आलोचना के क्षेत्र में हम यदि गौर करें तो हमें लक्षित होता है, हिन्दी आलोचना में जितने भी बड़े आलोचक हुए उन सभी ने किसी न किसी रूप में भक्तिकाव्य एवं कवियों पर बात की है। भारतेंदु भी इससे अपवाद नहीं रहे उन्होंने कम ही सही पर भक्तिकाव्य पर सोचा जरूर था। उन्होंने जिस लिबरल दल की बात की उसे आज सभी स्वीकार करते हैं। मगर यह बात उस वक्त अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः कुछ सूत्र रूप में ही क्यों न हो भारतेंदु ने भक्तिकाव्य के उदात्त बिंदु को छुआ तो था। वैष्णव कवियों की परंपरा पर भी उन्होंने कम ही बात की, वैसे वे भी इसी परंपरा के अनुवर्ती थे। वास्तव में देखा जाये तो, भारतेंदु ने विस्तार से कवियों आदि की आलोचना नहीं लिखी, लेकिन कुछ जगहों पर या उनकी टिप्पणियों के रूप में उनके मूल्यांकन की विशेषता को देख सकते हैं। उन्होंने ‘नाटक एवं दृश्यकाव्य’ निबंध के माध्यम से कालिदास के काव्य में चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता की प्रशंसा की। कालिदास और शेक्सपियर दोनों को वे मानव-समाज का गंभीर समालोचक कहा है।

रामविलास शर्मा कहते हैं कि ‘हिन्दी में व्यंग्यपूर्ण आलोचना का सूत्रपात करनेवाले भी भारतेंदु ही हैं।’ अर्थात् उन्होंने यह बात उनके ‘नाटक, नामक निबंध के आधार पर कही है। अतः हिन्दी आलोचना को निर्भीक एवं व्यंग्यपूर्ण शैली देने का कार्य भी वे अपनी आलोचना के माध्यम से कर रहे थे। निष्कर्षतः कहना चाहूंगा कि भारतेंदु का आलोचनात्मक कर्म कम है, किन्तु उन्होंने अपने आलोचना के माध्यम से हिन्दी आलोचना में ऐतिहासिक, व्यंग्यात्मक एवं तुलनात्मक समालोचना का सूत्रपात किया। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य साहित्य में स्वाभाविकता की आवश्यकता को परिलक्षित करते हुए, जनसाधारण से उसका तादात्म्य कराना है। अतः भारतेंदु जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रदूत है उसी प्रकार हिन्दी आधुनिक आलोचना के भी अग्रदूत है।

...

संदर्भ :-

1. बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिन्दी आलोचना का आरंभ - अभीषेक रौशन, पृ.सं.17
2. हिन्दी आलोचना: उद्भव और विकास - भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ.सं.227

- 3.हिन्दी आलोचना - विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.सं.17
- 4.हिन्दी गद्य: विन्यास और विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.सं.182
- 5.महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण - रामविलास शर्मा पृ.सं.281
- 6.भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं - रामविलास शर्मा पृ.सं.57
- 7.भारतेन्दु ग्रंथावली (पहला खंड) - शिवप्रसाद सिंह - पृ.सं.771
- 8.वही - पृ.सं.775
- 9.वही - पृ. सं.772
- 10.वही - शिवप्रसाद सिंह, पृ.सं.773
- 11.भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं - रामविलास शर्मा पृ.सं.149-50
- 12.भारतेन्दु समग्र - हेमंत शर्मा, पृ.सं.1028
- 13.गुप्त निबंधावली (भाग-1) - सं.झाबरमल शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ.सं.322-23
- 14.भारतेन्दु समग्र - हेमंत शर्मा, पृ.सं.1028
- 15.वही - पृ.सं.1028
- 16.बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिन्दी आलोचना का आरंभ - अभीषेक रौशन, पृ.सं.72
- 17.वही - पृ.सं.72

...

संपर्क-सूत्र :- पीएच.डी.शोधार्थी, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाणा.

मो:9490139682

प्रेमचंद का धर्म और सम्प्रदाय निरपेक्ष कहानी साहित्य

- डॉ. मीना सिंह

प्रेमचंद का कहानी साहित्य इतना विशाल और विस्तृत है कि उसमें समूचा युग समाया हुआ है। 1907 ई. से लेकर 1936 ई. तक प्रेमचंद ने लगातार साहित्य की सेवा की और इस अवधि में उनकी प्रतिभा के वरदान स्वरूप करीब 400 कहानियाँ हिन्दी साहित्य को प्राप्त हुईं। प्रेमचंद की कहानियों की संख्या के संबंध में पं. नंददुलारे वाजपेयी का विचार है कि “प्रेमचंद जी की कहानियाँ संख्या में 300 के लगभग हैं। इसके अतिरिक्त उनकी उर्दू कहानियों की संख्या भी एक सौ से ऊपर है।”¹ अपनी इन कहानियों में प्रेमचंद ने मानव जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इन कहानियों की सामग्री वे अपने जीवन की घटनाओं से, इतिहास से, सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन से और उन लोगों से जुटाते थे, जिनके बीच वे रहते थे और जिन्हें जानते पहचानते थे। अनेक स्थानों से सामग्री ग्रहण करने के कारण इनकी कहानियाँ अपने अंदर संपूर्ण युग को समेटे हुए हैं। इन कहानियों के माध्यम से उन्होंने अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक विचारों को प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद का युग धार्मिक विद्वेष का युग था। यह विद्वेष मनुष्य को मनुष्य से दूर कर रहा था और साथ ही साथ उसकी गति को अवरुद्ध भी कर रहा था। हिन्दू और मुसलमान खुलकर एक-दूसरे के विरोध में आ गए थे, जिसके परिणाम स्वरूप स्वाधीनता आंदोलन की गति मंद पड़ती जा रही थी। दोनों धर्मावलंबियों के पृथक होने से राष्ट्रीयता कमजोर पड़ रही थी। प्रेमचंद इस स्थिति को समझ रहे थे, इसीलिए वे सदैव ‘हिन्दू-मुस्लिम एकता’ के लिए प्रयासरत रहे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हो इसके लिए आवश्यक था कि दोनों वर्गों के लोग एक दूसरे को भलीभांति जानें, समझें और एक दूसरे की भावना का आदर करें। प्रेमचंद के लिए धर्म महत्वपूर्ण नहीं था, बल्कि व्यक्ति महत्वपूर्ण था। धर्म संबंधी अपने दृष्टिकोण को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया है। प्रेमचंद ने प्रचुर मात्रा में ऐसी कहानियों की सर्जना की है, जिनमें इनकी धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष दृष्टि स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इन कहानियों में से प्रमुख कहानियाँ प्रकाशन क्रम के अनुसार निम्नलिखित हैं --

“पंच परमेश्वर-जून 1916 ई., विचित्र होली-मार्च, 1921 ई.,
बौड़म-अप्रैल, 1923 ई., मुक्तिधन-मई, 1924 ई., क्षमा-जून,
1924 ई., शतरंज के खिलाड़ी-अक्टूबर, 1924 ई., डिक्की के रूपये-
जनवरी, 1925 ई., मंदिर और मस्जिद-अप्रैल 1925 ई., लैला-
जनवरी, 1926 ई., मंत्र-फरवरी, 1926 ई., हिंसा परमो धर्म: -
दिसम्बर, 1926 ई., न्याय-मार्च 1929 ई., जुलूस-मार्च 1930 ई.,
दो कब्रें-जून, 1930 ई., ईदगाह-अगस्त, 1933 ई., दिल की रानी,
नवम्बर, 1933 ई., । जिहाद और तगादा दो कहानियाँ ऐसी हैं
जिनका प्रकाशन वर्ष अज्ञात है।”²

इन कहानियों के हिन्दू और मुसलमान पात्र धर्म-संप्रदाय के संकुचित दायरे से मुक्त हैं। दोनों वर्ग में ऐसे लोग हैं जो अपने-अपने धर्म पर आरूढ़ रहकर भी दूसरे धर्मावलंबियों और धर्म को आदर की दृष्टि से देखते हैं और यथोचित सम्मान करते हैं। हिन्दू और मुसलमान आपस में किस प्रकार घुल-मिलकर रहते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं, इसे 'पंच परमेश्वर' नामक कहानी में देखा जा सकता है। इस कहानी में हिन्दू पंचायत मुसलमान करता है और मुसलमान की पंचायत हिन्दू। दोनों को पंचायत का आदेश मानना पड़ता है। न्याय के आगे जुम्नन शेख और अलगू चौधरी दोनों व्यक्तिगत संबंधों की कोई महत्व नहीं देते।

'बौड़म' कहानी का मुख्य पात्र मुहम्मद खलील उर्फ बौड़म पूर्णरूपेण धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष है। यद्यपि वह पांचों वक्त नमाज़ पढना चाहता है, परंतु धार्मिक संकीर्णता से दूर है। अपने घर पर होने वाली कुर्बानी का बौड़म विरोध करता है, परंतु सफल नहीं हो पाता। इस प्रायश्चित के लिए वह कसाइयों से गाय खरीदकर हिन्दुओं को देता है। वह बिना किसी धार्मिक भेदभाव के एक चमारिन के दो बच्चों को अपने दस्तरखान पर खाना खिलाता है, क्योंकि वे दोनों उसके चाचा के लड़के हैं। 'मुक्ति धन' कहानी का रहमान गाय को उसी आदर भाव से देखता है जिस आदर भाव से एक हिन्दू। गरीब होते हुए भी वह पांच रुपए का नुकसान उठाकर गाय को लाला दाऊदयाल के हाथ बेचता है क्योंकि वे गाय का पालन-पोषण ठीक ढंग से करेंगे। रहमान के इस कार्य का प्रभाव लाला दाऊदयाल पर पड़ता है और वे लगातार रहमान की आर्थिक सहायता करते रहते हैं। रहमान के इस कार्य को लाला दाऊदयाल अपने धर्म पर एहसान मानते हैं। इस एहसान को चुकाने के लिए वे लगातार उसकी सहायता करते हैं। लाला दाऊदयाल का कथन द्रष्टव्य है- "तुमने भले ही जानकर मेरे ऊपर कोई एहसान न किया हो, पर असल में वह मेरे धर्म पर एहसान था। मैंने भी तो तुम्हें धर्म के काम के लिए रुपये दिए थे। बस हम दोनों बराबर हो गए।"³ पूरी कहानी सांप्रदायिक एकता का अद्भुत चित्र उपस्थित करती है।

'मंदिर और मस्जिद' कहानी में जमींदार चौधरी इतरत अली के माध्यम से प्रेमचंद ने धर्म-संप्रदाय निरपेक्षता का जो चित्र उपस्थित किया है, वह अद्वितीय है। "यद्यपि चौधरी साहब पक्रे मुसलमान हैं, फिर भी हिन्दू धर्म उनके लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना इस्लाम। वे अपने घर को गाय के गोबर से लिपवाते हैं, गंगाजल का छिड़काव कराते हैं और गंगाजल पीते हैं। एक पंडित उनके बगीचे में नित्य दुर्गा का पाठ भी करता है।"⁴ सांप्रदायिक सहिष्णुता का और धर्म-संप्रदाय निरपेक्षता का इससे बड़ा दूसरा उदाहरण और क्या हो सकता है। मंदिर और मस्जिद दोनों को चौधरी साहब समान महत्व देते हैं और दोनों की सुरक्षा को आवश्यक मानते हैं।

'डिक्री के रुपये' कहानी भी हिन्दुओं और मुसलमानों की अभिन्नता को प्रकट करती है। प्रेमचंद हमेशा इस बात पर बल देते हैं कि हिन्दू और मुसलमान यहां के परंपरित निवासी हैं। दोनों का कल्याण तभी संभव है, जब धार्मिक भेदभाव भूलकर वे एक दूसरे का सहयोग करें। उनकी कहानियों के हिन्दू-मुस्लिम पात्र एक दूसरे के अभिन्न बनकर ही सामने आते हैं। पात्रों के नाम बदल दिए जाए तो हिन्दू-मुसलमान की पहचान ही समाप्त हो जाएगी। उपर्युक्त कहानी के नईम और कैलाश ऐसे ही पात्र हैं।

'हिंसा परमो धर्मः'। कहानी में प्रेमचंद ने यह बताने का प्रयास किया है कि सामान्यतः

हिन्दू और मुसलमान धर्मों में धार्मिक उन्माद से भरे हुए लोगों की कमी नहीं है, फिर भी दोनों संप्रदायों में ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो धर्म संप्रदाय निरपेक्ष रहकर मानव मात्र को समान समझते हैं। इस कहानी में प्रेमचंद ने जहां जामिद जैसे धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष मानवीय पात्र की सृष्टि की है, वहीं यह भी संकेत किया है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों संप्रदायों में उन्मादी लोग हैं और ये ही संप्रदायवादी मनोवृत्ति का विष समाज में फैलाते हैं, किन्तु जामिद जैसे चरित्रों की उपस्थिति में संप्रदायवादियों के काले कारनामों पर रोक लगती है। किस प्रकार से पंडित और मौलवी 'शुद्धि' और 'तबलीग' की आड़ के पीछे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति करते हैं, इसे यह कहानी खोलकर सामने लाती है और संकेत देती है कि इन्हीं लोगों के द्वारा ही समाज में अव्यवस्था फैलती है।

धर्म संप्रदाय से परे रहकर राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान किस प्रकार से सहयोग कर रहे थे, इसका वर्णन 'जुलूस' नामक कहानी में किया गया है। कहानी का मुख्य पात्र इब्राहीम गांधीवादी है। भारतवर्ष को स्वतंत्र देखना उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। देश की स्वतंत्रता के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को वह सदैव प्रस्तुत है। भारतवर्ष को वह अपना देश मानता है और यहां के निवासियों को अपना भाई। गंगा नदी उसके लिए हिन्दुओं की तरह पवित्र है। इब्राहीम की वसीयत उसके धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। इसी वसीयत से हमें यह भी मालूम हो जाता है कि वह भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए कितना इच्छुक था। इब्राहीम ने मरते समय वसीयत की थी कि "मेरी लाश को गंगा में नहलाकर दफन किया जाए और मेरे मजार पर स्वराज्य का झंडा खड़ा किया जाए।"⁵ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि भारतवर्ष में इब्राहीम जैसे मुसलमानों की कमी नहीं है जो भारतवर्ष को अपना देश मानते हैं और देश की स्वतंत्रता के लिए अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहकर वे खून की अंतिम बूंद तक दे सकते हैं। इब्राहीम की इन अच्छाइयों के कारण ही उसकी मृत्यु पर सारा शहर उमड़ पड़ा और सबके नेत्र अश्रुपूरित थे।

'दो कब्रें' नामक कहानी के डॉ. रामेंद्र धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष हैं। रामेंद्र ने उदारता में आकर सुलोचना से शादी कर ली थी जो जुहरा नामक वेश्या की लड़की थी। सुलोचना के पिता कुंवर साहब थे। सांप्रदायिक एकता की परेशानियों से प्रेमचंद परिचित थे। रामेंद्र को अपने इस कार्य से अनेक परेशानियाँ हुईं। दोस्तों में उनका सामाजिक बहिष्कार करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने क्लब जाना बंद कर दिया। बालिका होने की दावत में "खां साहब आए, मिर्जा साहब आए, मीर साहब आए, मगर पंडितजी और बाबूजी और लाला साहब और चौधरी साहब और कक्कड़, मेहरा और चोपड़ा, कौल और हुक्कू श्रीवास्तव और खरे किसी का पता नहीं था।"⁶ यह हमारी जाति व्यवस्था थी जिसने किसी भी प्रतिष्ठित हिन्दू को दावत में आने से रोक दिया। डॉ.रामेंद्र का पारिवारिक जीवन नष्ट हो गया। उन्होंने वेश्याओं के बधावा को लौटा दिया। जुहरा की पुत्री सुलोचना है और सुलोचना की पुत्री शोभा। दोनों के पिता हिन्दू है। सुलोचना की मां मुसलमान थी। शोभा की मां न हिन्दू है न मुसलमान। हिन्दू उसे हिन्दू कहने को तैयार न थे, मुसलमानों को उससे कोई परहेज न था। उदार हिन्दू कुंवर साहब और रामेंद्र दोनों की कब्रों को पूजते हैं। वे दोनों सांप्रदायिक भावना से मुक्त होना चाहते हैं, परंतु समाज से बंधे हैं। सुलोचना एक बच्ची की मां बनकर भी अभिजात परिवार की महिला न बन सकी। परंतु प्रेमचंद आशान्वित हैं कि सांप्रदायिक एकता के लिए ऐसे विवाह आवश्यक हैं। जुहरा और सुलोचना की कब्रें हमारी प्रेमप्रियता और मानवता की कब्रें हैं।

प्रेमचंद किसी भी माध्यम से सांप्रदायिक एकता चाहते हैं। दो कब्रों दोनों संप्रदायों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कुंवर साहब और रामेंद्र दोनों को इंतजार है कि शायद कभी समाज में सुधार हो। समाज में उनके जैसा प्रेम और समर्पण विकसित हो। वे दोनों ही इन कब्रों के पास बैठकर उस दिन का इंतजार करते हैं, जब समाज बदलेगा। दोनों संप्रदायों में एकता होगी। प्रेमचंद के अनुसार यह एकता तभी संभव है जब लोग कुंवर साहब और रामेंद्र की तरह धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष दृष्टि रखें।

‘मंत्र’ कहानी में प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार से ‘शुद्धि’ और ‘तबलिंग’ के माध्यम से पंडित और मौलवी जनमानस में धार्मिक उत्तेजना फैलाते हैं। धर्म को लेकर समाज में जो कट्टरता है, उसके मूल में पंडित और मौलवी हैं। साथ ही साथ लेखक यह भी संकेत करते हैं कि जनता अब उनके बहकावे में नहीं रह गई है। लोग पंडितों और मौलवियों के चरित्र को समझ गए हैं। धर्म की दुहाई देकर जनता का हृदय नहीं जीता जा सकता। इस कहानी में लेखक ने पंडितों और मुल्लाओं पर करारा व्यंग्य करके अपनी धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष दृष्टि का परिचय दिया है।

इस्लाम के वास्तविक स्वरूप से भारतीय हिन्दू जनता अनभिज्ञ थी। इस्लाम के बारे में प्रारंभ से ही उनकी मानसिकता बिगड़ चुकी थी। सदैव तीसरी शक्तियों द्वारा यह प्रयास भी होता रहा कि दोनों धर्मावलंबी एक दूसरे से दूर रहें। यह भी एक मुख्य कारण था, जिससे हिन्दुओं और मुसलमानों में अधिक कट्टरता बढ़ रही थी। प्रेमचंद इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने अपनी कहानियों में इस्लाम के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किया। इस्लाम में भी सत्य, न्याय, अहिंसा, सहयोग और बंधुत्व की भावना को उतना ही महत्वपूर्ण बताया गया है, जितना हिन्दू धर्म में। ऐसी कहानियों में न्याय, क्षमा, गैरत की कटार, फातिहा, राजभक्त, लैला, ईदगाह आदि प्रमुख हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद ने मुस्लिम इतिहास के अच्छे और नेक पहलुओं को प्रस्तुत करके हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद ने प्रचुर मात्रा में धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष कहानियों की रचना करके ‘हिन्दू-मुस्लिम’ संबंधों में सुधार लाने का प्रयास किया।

...

संदर्भ :-

1. प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन, नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ.91
2. प्रेमचंद विश्वकोश भाग-2, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, कहानियों का प्रकाशन वर्ष उद्धृत
3. मानसरोवर भाग-3, प्रेमचंद, पृ.185
4. प्रेमचंद विश्वकोश भाग-2 , डॉ. कमलकिशोर गोयनका, पृ.299
5. मानसरोवर भाग-7, प्रेमचंद, पृ.179
6. वही, पृ.42

...

संपर्क-सूत्र :- अंशकालिक प्रध्यापिका, निजाम कॉलेज, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद.

मो: 9010773563

कुँवर नारायण के खण्डकाव्यों में मिथकीय सन्दर्भ

- अमरनाथ प्रजापति
एवं प्रो.सच्चिदानंद चतुर्वेदी

कुँवर नारायण हिन्दी साहित्य में मिथकों को आधार बनाकर सृजन करने वाले महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बजाने' उनके दो प्रसिद्ध मिथकीय खण्ड काव्य हैं। दोनों के कथासूत्र 'कठोपनिषद्' से लिए गए हैं। इन औपनिषदिक कथासूत्रों के माध्यम से कवि ने जो प्रश्न उठाये हैं वे केवल वर्तमान समय पर ही लागू नहीं होते बल्कि वे सार्वकालिक और सार्वजनीन हैं। प्रत्येक मनुष्य 'जीवन' और 'मृत्यु' के रहस्यों में उलझा रहता है। यह प्रश्न किसी एक समय या एक युग के लिए नहीं बल्कि युग-युगों से चला आता एक जटिल प्रश्न है। कवि ने 'नचिकेता' और 'वाजश्रवा' जैसे दो पात्रों के माध्यम से अनेक सनातन प्रश्नों, मानवीय मूल्यों, इंद्रिय बोध और सुख-संपदा आदि को दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ढंग से देखने की कोशिश की है। उन्होंने इन रचनाओं के माध्यम से मनुष्य के दो पीढ़ियों के सोच-विचार एवं जीवन बोध को अभिव्यक्त किया है। वाजश्रवा (पिता) पुरानी परंपरा का छली, स्वार्थी एवं सत्तालोलुप व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है तो नचिकेता (पुत्र) आधुनिक पीढ़ी के संघर्षशील, वास्तविक, ज्ञान पिपासु एवं जीवन मूल्यों की सार्थकता को समझने वाला है। वह गलत और अनिष्ट कार्यों का विरोध करता है। दोनों खंडकाव्यों में 'जीवन' और 'मृत्यु' जैसे कालातीत प्रश्न को बहुत ही करीब से एवं सूक्ष्म ढंग से देखने-परखने और सुलझाने की कोशिश की गयी है। 'वाजश्रवा के बहाने' की भूमिका में कुँवर नारायण लिखते हैं कि- "आत्मजयी में यदि मृत्यु की ओर से जीवन को देखा गया है तो 'वाजश्रवा के बहाने' में जीवन की ओर से मृत्यु को देखने की एक कोशिश है."¹

कुँवर नारायण का मिथक और आख्यान मनुष्य के बुनियादी और अस्तित्वगत प्रश्नों की चुनौतियों को सामने रखता है। उसमें अनैतिकता, हिंसा-प्रतिहिंसा, साम्प्रदायिक तनाव, राजनैतिक विषमता जैसे तमाम प्रसंग और प्रश्न जो आज के समय और संसार को व्यथित और त्रस्त करने वाले हैं, वे सब उनकी रचनाओं में किसी न किसी रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। उनकी चिंताएँ व्यापक और गहरी हैं जो मनुष्य के भीतर चलने वाले द्वंद्व, मंथन, उथल-पुथल को बारीकी से दर्शाती हैं। उनके मिथक और आख्यान वर्तमान संसार की संवेदना, प्रासंगिकता एवं वैचारिक चिंतन में इस तरह घुले-मिले हैं कि दोनों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है। इस संदर्भ में प्रयाग शुक्ल का कथन है कि- "कुँवर नारायण के यहाँ समकालीन संसार में उसकी घटनाओं और प्रसंगों में तथा मिथकों और आख्यानों के संसार में वे माने समकालीन संसार को घुल-मिला देते हैं।"² अपनी अभिव्यक्ति के लिए कुँवर नारायण जिन मिथकों और आख्यानों का सहारा लेते हैं वे केवल मनुष्य की चिंताओं और जीवन मूल्यों को समझने-परखने के लिए ही नहीं, बल्कि वे मानते हैं कि मिथक और आख्यान आज के संसार में स्वयं की प्रासंगिकता और महत्व को भी तलाशते हैं। वे सक्रिय और जीवित होते हैं। वे 'भाषा' और 'प्रतीक' के रूप में जीवित और सक्रिय है। इन 'प्रतीकों' और 'स्मृतियों' के

माध्यम से जनमानस तक पहुँचने की एक सशक्त और सांकेतिक भाषा हमारे अवचेतन में पहले से ही मौजूद है। कविता इस 'भाषा' में भी दूसरों से बात कर सकने की एक कला है।³ कोई भी मिथक या आख्यान किसी एक अर्थ या मर्म से बँधा नहीं होता है। मिथक का एक तर्कसंगत प्रयोग किसी भी रचनाकार के लिए चुनौतीपूर्ण होता है। वह किसी मिथक को अपनी तरह से उपयोग करता है। वर्तमान समय और समाज में नये ढंग से उसकी पुनर्व्याख्या करता है। 'आत्मजयी' से लेकर 'वाजश्रवा के बहाने' तक कुँवर नारायण मिथकों के प्रयोग में कुछ नये रंग, नये विचार, नई संवेदनाएँ भरते हैं। जो हमें उनके संवादों में तथा संवादों से प्रकट होने वाले अर्थों और मर्मा में बखूबी दिख जाते हैं। इसमें कवि की मननशीलता और चिंतन की गहराई स्पष्ट तौर पर दिखती है। उनकी यह मननशीलता काव्यात्मक उड़ानों से कई बृहत्तर संदर्भों और अर्थों की ओर हमें ले जाती है।

'आत्मजयी' में कवि ने इतिवृत्तात्मकता की राह अपनाते हुए नये विचारों को जन्म दिया है। भारतीय दर्शन को वेदांत हो या अस्तित्ववाद, कवि ने वर्तमान के केन्द्र में खड़े होकर प्रश्नाकुलताओं और समस्याओं को वाणी दी है। इसमें सघन विचार और अंतर्वस्तु में कवि की स्वतंत्र विचार गुंफित हैं। पिता वाजश्रवा को कवि ने अज्ञानी, स्वार्थी, धनलोलुप एवं भौतिक सुविधाओं के मोह से युक्त पुरानी पीढ़ी का प्रतीक माना है जबकि नचिकेता का विद्रोही विम्ब निर्मित होकर अभिव्यक्ति पाता है। वह पिता के स्वार्थ युक्त दान का विद्रोह करता है-आत्मजयी में नचिकेता ज्ञान और तर्क से युक्त नयी पीढ़ी के लिए एक प्रतीक रूप में है। तर्क से सत्य की तलाश भारतीय दर्शन का एक लक्षण रहा है। कुँवर नारायण ने भी इस कृति में वाद-विवाद-संवाद को विशेष महत्व दिया है। नचिकेता पिता के पुराने जीवन-मूल्यों को तर्क की कसौटी पर रखता है। वह अपने पिता से कहता है -

“तुम समृद्ध होगे
लेकिन उससे पहले
समझाओ मुझे अपने कल्याण का आधार
ये निरीह आहुतियाँ। यह स्वतः। यह हिंसा।
ये अबोध तड़पनें। बीमार गायों-सा जन-समूह।”⁴

विचारों की सहमति और असहमति के केन्द्र में सहिष्णुता और मनुष्यता होनी चाहिए। उसमें स्वार्थ और लोभ स्वच्छ विकासशील परंपरा में बाधा ही साबित होती है। मनुष्यता की रक्षा ही भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि है। अनेक ऋषि-मुनि एवं महान विभूतियों ने सत्य और मानवीयता के उत्कर्ष एवं रक्षा के लिए अनवरत संघर्ष किया है। इसलिए नचिकेता असहमति और विद्रोह में विश्वास करता है किन्तु सविनय और सहिष्णुता के साथ। वह स्वार्थी और लोभी पिता से कहता है-

“असहमति को अवसर दो। सहिष्णुता को आचरण दो
कि बुद्धि सिर ऊँचा रख सके...
उसे हताश मत करो काइयाँ स्वार्थी से हरा-हराकर।
अविनय को स्थापित मत करो,
उपेक्षा से खिन्न न हो जाय कहीं

मनुष्य की साहसिकता।
अमूल्य थाती है यह सबकी,
इसे स्वर्ग के लालच में छीन लेने का
किसी को अधिकार नहीं।...'⁵

इस कृति में तार्किकता से उत्पन्न अनेक भाव तथा विचार ध्वनित होते हैं जिसमें आधुनिक भाव बोध निहित है। कृष्ण दत्त पालीवाल इस संदर्भ में लिखते हैं कि- “आत्मजयी’ की पूरी लम्बी कविता अपनी विचार-श्रृंखला के अटूटत्व से बीसवीं शताब्दी के मनुष्य के लिए आधुनिक भावबोध में दार्शनिकता के लिए जगह बनाती है। दार्शनिकता की चर्चा का यह अर्थ नहीं है कि ‘आत्मजयी’ दार्शनिक काव्य है - उसकी शब्दावली में ऐसे गूढ़ अर्थ गर्भित शब्द प्रतिमान हैं जो उसकी अनेकार्थक ध्वनियों को एक नए विचार की भूमि प्रदान करते हैं।”⁶ नचिकेता मृत्यु, संसार, ईश्वर, ब्रह्म जैसे परंपरागत प्रश्नों से टकराता है तथा इससे स्वाधीनता एवं मुक्ति का मार्ग तलाशता है। उसे भौतिक सुख-सुविधाएँ स्वप्न-सी प्रतीत होती हैं। वह अपने वास्तविक अस्तित्व की तलाश के लिए बेचैन होता है।

हर रचनाकार अपने समानांतर चल रहे विमर्शों, विचारों एवं चिंतन-संपदा से अवगत होता है। वह उनसे कुछ हद तक सहमत-असहमत भी होता है। वह उनसे टकराकर अपनी प्रतिभा से नया मार्ग भी अन्वेषित करता है। कुँवर नारायण जिस दौर में ‘आत्मजयी’ की रचना कर रहे थे उस समय अस्तित्ववाद चरम पर था। वह नई कविता का दौर था। उस समय अनेक कवि इस दर्शन से प्रभावित थे, किंतु जहाँ तक कुँवर नारायण का सवाल है वे इन सभी दर्शनों से परिचित होते हुए कुछ विचारों से सहमत होते हुए भी उसके मोहपाश से दूर थे। उसके चंगुल में बँधे नहीं थे। उनका दर्शन मूलतः भारतीय है। वे अपने विचारों की सर्जना के लिए भारतीय आख्यान की कथा को चुनते हैं। प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं कि- “लोग बिना जाने-बूझे कुँवर जी पर विदेशी और अस्तित्ववादी प्रभावों का आरोप लगा देते हैं, जबकि उनके चिंतन और काव्य की जड़े निस्संदेह भारतीय दर्शन और संस्कृति में हैं।”⁷ अस्तित्ववादी दर्शन के केन्द्र में वैयक्तिक जीवन की प्रधानता होती है। किन्तु ‘आत्मजयी’ के नचिकेता का अस्तित्वीय चिंतन सार्थक जीवन की तलाश है। वह आत्महत्या के क्षणों में जीवन की विफलता, निराशा, सूनेपन और अस्तित्व की पीडा की तात्कालिक अभिव्यक्ति करता है, जहाँ पर अस्तित्ववादी चिंतन का आभास होता है, किन्तु वह शीघ्र ही इससे मुक्त होकर महत्तर अन्वेषण की दिशा में बढ़ जाता है। उसकी आकांक्षाएँ विस्तारित होती हैं। वह निजता से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानव समाज की हित के बारे में सोचता है। वह उस अमरत्व की माँग करता है जिससे पूरी मानवता सम्मानित हो सके। वह ऐसी सर्जना करना चाहता है जिसमें आत्मीयता, वत्सलता, ममत्व और अमरत्व बोध हो -

“मुझे हाथ चाहिए - वत्सल।
नेत्र - ममता से छलछल।
आत्मीयता - जिसकी छाँह में चल सकूँ।
सुरक्षा - जिसकी बाँह में पल सकूँ।
अमरत्व - जो इन विध्वंस यात्राओं का साक्षी हो।
इस रचना के लिए उत्तरदायी एक ईश्वर दो।”⁸

यहाँ पर नचिकेता की चिंता निजी जीवन से ऊपर उठ जाती है। वह संपूर्ण मानव जाति की चिंता करता है। वह उन जीवन-मूल्यों को महत्व देता है जो व्यक्तिवाद, वस्तुवाद और भोगवाद से परे हो। इस अर्थ में 'आत्मजयी' में भारतीय आध्यात्मिक तत्व चिंतन स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

कुँवर नारायण ने अपनी पूर्वकृति 'आत्मजयी' में वाजश्रवा और नचिकेता को वस्तुवादी और आत्मिक प्रतीक के रूप में माना है। दोनों के जीवन-मूल्यों में पर्याप्त भिन्नता है। नचिकेता अपने पिता की वस्तुवादी दृष्टिकोण को नकारता है। किन्तु 'वाजश्रवा के बहाने' में उन्होंने इसे बिल्कुल नये दृष्टिकोण से देखा है। इसमें पिता-पुत्र के संबंधों को दोहरी जीवन शक्ति के रूप में देखते हैं। उन्हीं के शब्दों में- "पिता-पुत्र के संबंधों को मूलतः द्वंद्वात्मक ढंग से न देखकर संयुक्त या 'दोहरी' जीवन शक्ति के रूप में देखा है।"⁹ वे दोनों पीढ़ियों को दो छोर के रूप में न देखकर एक ऋतु-चक्र की तरह देखते हैं जिसमें आरंभ और अंत न होकर एक चक्राकार गति होती है। वे नचिकेता को जीवन का उदय तो वाजश्रवा को जीवन का सायंकाल मानते हैं- "पहले भाग 'नचिकेता की वापसी' में जीवन के आह्वान और उदय को देखा गया है। दूसरे भाग 'वाजश्रवा के बहाने' में एक विदग्ध जीवन का सायंकाल है। दोनों एक ऋतु-चक्र के अभिन्न हिस्से हैं। चक्र में चढ़ाव-उतार की चक्राकार गति है, आरंभ और अंत नहीं।"¹⁰ इसलिए वे प्रत्येक पीढ़ी के जीवन-चक्रों के अंतर्संबंधों को स्वीकार करते हैं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उदय और अस्त होता है, किन्तु वह पूरी तरह समाप्त नहीं, बल्कि एक दस्तावेज की तरह अतीत में जीवित रहता है इसी तरह प्रत्येक वर्तमान जीवन भी भविष्य के नवागन्तुकों के बाद अतीत में तब्दील हो जाएगा। यह जीवन-चक्र का सिलसिला अनंत काल से चला आ रहा है और चलता रहेगा। इस जीवन-चक्र को स्पष्ट करते हुए वाजश्रवा कहता है-

“कभी मत भूलना कि मैं तुम्हारा पिता हूँ,
तुम्हारा भविष्य नहीं -
तुम्हारा वर्तमान नहीं -
लेकिन तुम्हारा अतीत हूँ
जिसे तुम कभी भी
पूरी तरह अस्वीकार नहीं कर सकोगे।”¹¹

कुँवर नारायण ने 'वाजश्रवा के बहाने' में क्षमाभाव, पश्चताप, भूल-सुधार के द्वारा जीवन को सहज, सरल और सार्थक बनाने के पक्ष में दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य के प्रथम खण्ड 'नचिकेता की वापसी' वाजश्रवा के लिए अपनी भूल-चूक सुधारने का अमूल्य अवसर है जिसे स्पष्ट करते हुए कुँवर नारायण भूमिका में लिखते हैं- "पुत्र की 'वापसी' एक अमूल्य अवसर है कि वाजश्रवा अपनी भूल चूकों को सुधार ले।"¹² इस अवसर तथा जीवन में आते रहने वाले इस तरह के अवसरों को, इस लम्बी कविता में विशेष महत्व दिया गया है। पछताव, पुरागमन जैसे शब्दों में यही भाव व्यंजित है। 'वापसी' जैसे भाव कविता में बार-बार लौटते हैं। आशा-निराशा के बीच झूलती मनःस्थितियों की लहरें हैं।

'नचिकेता की वापसी' निश्चित तौर पर वाजश्रवा के जीवन में नये परिच्छेद का आगमन है। इससे उसकी आशा और विश्वास लौटता है। नचिकेता को खोने के बाद वह मानवीय जीवन

की वास्तविक भावभूमि पर आ जाता है। तब उसे पछतावा होता है कि उसने एक छोटे से अहं की तुष्टि के लिए कितनी अमूल्य निधि खो दी है। 'नचिकेता की वापसी' उसे अपनी गलतियों को सुधारने का अमूल्य अवसर है। यह उसके लिए नये युग और नये मूल्यों का उन्मेष है। ओम निश्चल के शब्दों में- 'नचिकेता की वापसी वाजश्रवा के लिए नये युग के स्पंदन की आहट है, नये मूल्यों का उन्मेष है।'¹³

कुँवर नारायण ने इस काव्य में पिता-पुत्र के बुनियादी रिश्तों के अंतर्संबंधों को एक नया अर्थ देते हुए जीवन को सकारात्मक ढंग से देखने का प्रयास किया है। वाजश्रवा के दृष्टिकोण में एक लम्बे जीवनानुभव की परिपक्वता है जिससे वह जीवन के विविध रूपों को एक बृहत्तर आयाम दे पाता है। वह कभी पिता की तरह सोचता-विचारता है तो कभी पुत्र की तरह। इसलिए इस काव्य में उसके जीवनानुभवों का एक विस्तृत फलक उभरता है। वह केन्द्रीय स्थिति में रहते हुए भी दोहरी स्थिति में एक विशाल जीवन शक्ति को अनुभव करते हुए जीता है। इस संदर्भ में कुँवर नारायण का कथन है- "मेरी रचना में भी वाजश्रवा नेपथ्य में ही रहता है...कभी एक पिता की तरह, तो कभी स्वयं भी एक पुत्र की तरह। इस अर्थ में उसकी केन्द्रीय स्थिति भी है, और दोहरी स्थिति भी। उसे एक 'स्वयं-बिन्दु' बनाकर तीन पीढ़ियों को एक त्रैकोणिक परिप्रेक्ष्य से देखने की चेष्टा की है। वह कभी एक पिता होने और कभी एक पुत्र होने की नियति को सोचता-विचारता है।"¹⁴ पिता-पुत्र की इस दोहरी स्थिति को 'वाजश्रवा के बहाने' की इन पंक्तियों में भी स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है-

“उसका भोक्ता और द्रष्टा
एक ही सिक्के के दो पहलू हैं-
कंधों पर लबादा डाले
तख्त पर बैठा वह वयोवृद्ध
एक पराजित सम्राट भी हो सकता है
और एक विरक्त संन्यासी भी!
एक कृतार्थ पिता भी हो सकता है वही
और एक पुत्र की उदासी भी।”¹⁵

पिता-पुत्र तथा लौकिक-अलौकिक के बीच कवि एक समन्वय का भाव स्थापित करना चाहता है। वह समन्वय एवं सामंजस्य के महीन धागों से जीवन में परम सुख की तलाश करता है। वाजश्रवा कभी पुत्र के रूप में रह चुका है तथा अब पुत्र का अगला चरण पिता के रूप में है। अतः उसके पास दोनों जीवनानुभव हैं। इसलिए कुँवर नारायण पिता-पुत्र को भिन्न-भिन्न न देखते हुए एक रूप में देखते हैं। बाह्य रूप से अलग होते हुए भी अंतरंग से एक ही है -

“उवाच अलग-अलग
सार-वस्तु एक ही,
ऊपर से बहुरूपी
अंतरंग एक ही।”¹⁶

इसलिए कुँवर नारायण का मानना है कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन एक ऋतु-चक्र की तरह

होता है। वह बचपन, यौवन और वृद्धावस्था से गुजरता है। ये बदलती हुई पीढ़ियाँ, बदलते हुए जीवन चक्र की चुनौतियाँ जीवन के संतुलन को बिगाड़ने की कोशिश करती हैं। अतः इन परिस्थितियों में समझौते एवं सुलहों के द्वारा संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुँवर नारायण ने अपने खण्ड काव्यों में मिथक और आख्यानों का सार्थक और सही ढंग से प्रयोग किया है। ये खण्ड काव्य प्राचीन भारतीय दर्शन पर आधारित होने के बावजूद इसमें नवीनता, ताजगी और विशिष्टता है। इसमें वर्तमान समय की समस्याओं, परिस्थितियों एवं संवेदनाओं का जीवंत रूप प्रस्तुत हुआ है। इसमें कवि ने आधुनिक जीवन-मूल्य और सौन्दर्यबोध को उद्घाटित किया है तथा आत्मजगत् और वस्तुजगत् के अंतर्संबंधों और अंतर्विरोधों को आज के मानवीय जीवन के निकष पर परखने की कोशिश की है। वे लौकिक, अलौकिक, भावात्मक, बौद्धिक तथा जीवन की तमाम विभिन्नताओं को एक-दूसरे का पूरक मानते हुए उसमें समन्वय स्थापित करने तथा सहज, सरल एवं उदात्त जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

.....

संदर्भ :

1. वाजश्रवा के बहाने - कुँवर नारायण, पृ.सं.7
2. पूर्वग्रह - सं.प्रेमशंकर शुक्ल, जुलाई-सितम्बर, 2014, पृ.सं.43
3. कुँवर नारायण : उपस्थिति, सं.यतीन्द्र मिश्र, पृ.10
4. आत्मजयी - कुँवर नारायण, पृ.21
5. वही, पृ.23
6. पूर्वाग्रह-सं.प्रेमशंकर शुक्ल, जुलाई-सितम्बर, 2014, पृ.29
7. कुँवर नारायण : उपस्थिति.पृ.यतीन्द्र मिश्र, 70
8. आत्मजयी - कुँवर नारायण, पृ.70
9. वाजश्रवा के बहाने-कुँवर नारायण, पृ.8
10. वही, पृ.9
11. वही, पृ.103
12. वही, पृ.8
13. वागर्थ, अक्टूबर, 2015, पृ.70
14. शब्द और देशकाल-कुँवर नारायण, पृ.86
15. वाजश्रवा के बहाने-कुँवरे नारायण, पृ.41
16. वही, पृ.66

...

संपर्क-सूत्र :- हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046.

मौ:8985035590

साहित्य-सर्जन में 'चेतना' और 'अनुभूति' का योगदान

- राजेश कुमार यादव

चेतना मस्तिष्क को सक्रिय करने वाली शक्ति है। यह शब्द बेहोश न रहने की स्थिति को व्यक्त करता है। बेहोश न रहने की स्थिति का मतलब होश के सामान्य अर्थ से लेकर अपने प्रति, तथा अपने चारों तरफ घट नहीं घटनाओं, फैले हुए दृश्यों और वस्तुओं के प्रति सजगता रखने तक जाता है, उन्हें समझने तक जाता है और उनका मूल्यांकन कर उनके पक्ष या विपक्ष में कार्रवाई करने तक जाता है। मनुष्य में चेतना-शक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक होती है, क्योंकि मनुष्य का समाज उनकी अपेक्षा ज्यादा विकसित है। चेतना समाज में मानवीय संबंधों के क्रमशः सहज से जटिल होते जाने के अनुपात में विकसित होती रहती है। गजानन माधव मुक्तिबोध ने कहा भी है कि- "जैसे-जैसे समाज बदलता जाएगा, मानव संबंध भी बदलते जायेंगे तथा चेतना के रूप-स्वरूप में भी परिवर्तन होगा।"¹ यहाँ यह भी जोड़ना पड़ेगा कि स्वयं चेतना के बदलते जाने से मानव-संबंध बदलते जाते हैं, समाज बदलता जाता है, इस तरह चेतना-शक्ति के माध्यम से व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य संसार में क्रमशः द्वंद्व और संतुलन की चक्रीय प्रक्रिया चलती रहती है।

चेतना-शक्ति मस्तिष्क को एक के बाद एक क्रमशः तीन स्तरों तक सक्रिय करती है, जिसमें पहला स्तर ज्ञान प्राप्त करने का; दूसरा स्तर प्राप्त ज्ञान के अनुसार मन में अनुकूल या प्रतिकूल इच्छा उत्पन्न करने का; और तीसरा स्तर इस इच्छा के अनुसार व्यक्ति को क्रिया करने के लिए प्रेरित करने का होता है। इन स्तरों में पहले स्तर, यानी ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया सबसे जटिल होती है; प्राप्त ज्ञान के स्वरूप के आधार पर ही आगे की दोनों गतिविधियाँ संचालित होती हैं।

मनुष्य जब बेहोशी की स्थिति में नहीं रहता है, गफ़लत में नहीं रहता है, तो उसकी इंद्रियाँ संसार में घट रही घटनाओं, फैले हुए दृश्यों और वस्तुओं को सजगता से ग्रहण कर, उनका बिंब मस्तिष्क तक प्रेषित करती हैं; और इस क्रिया में मस्तिष्क का काम है सक्रिय होकर उन्हें ग्रहण करना। अब क्योंकि अलग-अलग ज्ञानेंद्रियाँ अपनी-अपनी पहुँच के हिसाब से पदार्थों का अलग-अलग बिंब मस्तिष्क में प्रेषित करती हैं, अतः इन बिंबों के रूप में जो हमें संवेदनागत इंद्रियग्राह्य-ज्ञान प्राप्त होता है वह असंबद्ध रहता है-अलग-अलग संवेदनों में बिखरा रहता है - "हमारा व्यवहार यह साबित करता है कि जिन वस्तुओं का इंद्रिय संवेदन हमें होता है, उनकी समझ तुरंत हासिल नहीं हो जाती, तथा जिन वस्तुओं की समझ हासिल हो जाती है, उनका इंद्रिया संवेदन तभी अधिक समझ तुरंत हासिल नहीं हो जाती, तथा जिन वस्तुओं की समझ हासिल हो जाती है, उनका इंद्रिय संवेदन तभी अधिक गहरा हो सकता है।"² इन संवेदनों की समझ हासिल करने के लिए इंद्रियों द्वारा प्राप्त अलग-अलग संवेदनों के आधार पर प्राप्त असंबद्ध ज्ञान को सुसंबद्ध बनाने का काम बुद्धि का होता है। बुद्धि तर्क के माध्यम से इनमें संगति बैठकर ज्ञान को पूर्ण बनाने का प्रयास करती है- "यह सत्य है कि ज्ञान का श्रीगणेश अनुभव से ही होता है, परंतु केवल अनुभव से ही ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, बुद्धि की भी आवश्यकता है। अतः काण्ट का स्पष्ट कथन है कि इंद्रिय

संवेदनों के बिना बुद्धि-विकल्प पंगु है और बुद्धि विकल्पों के बिना इंद्रिय-संवेदन अंधे हैं।”³ यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया को लेकर पाश्चात्य बुद्धिवादी और अनुभववादी दार्शनिकों में लंबी बहस चली थी जिसकी, शुरुआत बुद्धिवादी दार्शनिक रेने देकार्त (सन् 1596-1650) और अनुभववादी दार्शनिक जॉन लाक (सन् 1596-1650) ने की थी। बुद्धिवादियों का तर्क था कि ज्ञान सिर्फ बुद्धि द्वारा प्राप्त किया जाता है, और अनुभववादियों का तर्क था कि ज्ञान सिर्फ अनुभवों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। दोनों के तर्कों की समीक्षा करते हुए उनमें समन्वय स्थापित करने का काम इमान्युएल काण्ट (सन् 1724-1804) ने किया, इसलिए इनके सिद्धांत को समीक्षावाद कहा गया।⁴ काण्ट ने अपने समीक्षावाद के जरिये यह समझाया है कि ज्ञान प्राप्ति की सामग्री तो इंद्रियाँ ही संकलित करती हैं, पर उस सामग्री की सहायता से ज्ञान के स्वरूप को आकार देने का काम बुद्धि का ही होता है।

जब चेतना को इनका आभास हो जाता है कि इसने किसी वस्तु का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तब यह मस्तिष्क को इससे आगे की क्रिया के लिए प्रेरित करती है। दूसरी मंजिल में चेतना-शक्ति मन में वस्तु की प्रकृति के अनुसार (अच्छी या बुरी प्रकृति) उसके समीप जाने, उसे प्राप्त करने या उससे दूरी बनाए रखने की इच्छा; उसे बनाए रखने या नष्ट कर देने की इच्छा उत्पन्न करती है; क्योंकि अच्छी चीजें मन व मस्तिष्क पर अच्छा, तथा बुरी चीजें मन व मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव छोड़ती हैं। और अपनी तीसरी मंजिल में चेतना व्यक्ति को इस इच्छा के अनुरूप क्रिया (व्यवहार) करने के लिए प्रेरित करती है।

संसार के सभी मनुष्यों की चेतना-शक्ति समान नहीं होती-कुछ की अधिक, कुछ की कम और कुछ की सामान्य होती है। जहाँ चेतना-शक्ति कम होती है वहाँ यह अपने तीनों स्तरों में सामंजस्य नहीं बैठा पाती। इसकी व्याख्या जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के रहस्य सर्ग में इस प्रकार की है-

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की ;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडंबना है जीवन की।⁵

अतः कहा जा सकता है कि चेतना मस्तिष्क की वह शक्ति है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने आंतरिक और बाह्य (मानसिक और भौतिक) संसार के बीच संतुलन स्थापित करता है। चेतना-भौतिक जगत की वस्तुओं की प्रकृति को पहचानकर उनके अनुरूप अपने को ढालती है या अपनी प्रकृति के अनुरूप भौतिक वस्तुओं को ढालने का प्रयास करती है। व्यक्ति का जीवन इसी तरह चलता रहता है।

संवेदन व उससे प्राप्त अनुभूति, तथा अनुभूति की चेतना-शक्ति से टकराहट के फलस्वरूप उपजे भाव व विचार साहित्य की रचना सामाग्री होते हैं। इन सामग्रियों का मूल स्रोत यह दृश्यमय और ऐंद्रियगम्य भौतिक संसार है। इसी संसार से प्राप्त बिंबों का संयोजन कर कवि एक नए कल्पना-लोक की निर्मिति भी कर सकता है, करता आया है।

मूर्त और ऐंद्रियगम्य वस्तुओं से संसार की रचना होती है। मूर्त वस्तुओं का एक रूप होता

है और ऐंद्रियगम्य वस्तुओं की एक पहचान। यद्यपि मूर्त वस्तुएँ ऐंद्रियगम्य भी होती हैं, पर ऐंद्रियगम्य वस्तुएँ मूर्त हों ही यह आवश्यक नहीं है। इस बात की पुष्टि के लिए हवा, महक जैसी चीजों का उदाहरण दिया जा सकता है जो ऐंद्रियगम्य तो होती हैं पर मूर्त नहीं, क्योंकि ये दृश्यमय नहीं होतीं। जो वस्तुएँ दृश्यमय हैं वे मूर्त हैं, और इसीलिए ऐंद्रियगम्य भी। अब, क्योंकि मूर्त वस्तुएँ ऐंद्रियगम्य होती हैं और ऐंद्रियगम्य वस्तुओं की (जो मूर्त नहीं होतीं) एक पहचान होती है, अतः जो वस्तुएँ मूर्त और ऐंद्रियगम्य दोनों विशेषणों से लैस होती हैं उनकी अपनी एक खास पहचान होती है-क्योंकि उनका अपना एक खास रूप होता है।

ज्ञानेंद्रियाँ जब सांसारिक वस्तुओं, दृश्यों या घटनाओं के संपर्क में आती हैं तो इनसे उनकी एक परिचयात्मक टकराहट होती है। इस परिचयात्मक टकराहट में कुछ दृश्य या घटनाएँ ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से मन व मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव छोड़ती हैं, क्योंकि ज्ञानेंद्रियों का सीधा संबंध मन व मस्तिष्क से होता है। ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से दृश्यों या घटनाओं द्वारा मन व मस्तिष्क पर पड़े इस विशेष प्रभाव को संवेदन तथा इस संवेदन के स्वरूप के मानसिक बोधीकरण की प्रक्रिया को अनुभूति कहा जाता है। इसी अनुभूति से जब चेतना-शक्ति की टकराहट होती है तब मानस में उस अनुभूति से संबद्ध अनेक प्रकार के भावों तथा मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव होता है। अनुभूति मानसिक व्यापार है और चेतना मस्तिष्क को सक्रिय करने वाली शक्ति। अतः इसी के समानांतर दोनों की टकराहट से मानस में भावों का उदय होता है और मस्तिष्क में विचारों का।

अतः स्पष्ट है कि संवेदन-अनुभूति-चेतना-भाव-विचार, सब एक ही श्रृंखला की विभिन्न कड़ियाँ हैं-और कड़ियाँ मिलकर ही श्रृंखला का निर्माण करती हैं। दूसरे शब्दों में, इन सभी तत्वों का मूल उद्गम-स्रोत एक ही है, अतः जरूरत के हिसाब से प्रत्येक में दूसरे की थोड़ी या बहुत पैठ होती ही है। कवि के मिजाज के हिसाब से इन तत्वों की सामंजस्यपूर्ण व प्रामाणिक शाब्दिक अभिव्यक्ति साहित्य को जन्म देती है।

साहित्यकार का मिजाज बहुत कुछ उसकी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति या अपूर्ति पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त देश व समाज से प्राप्त अन्य अनुभव भी उसके मिजाज के निर्धारण में सहयोग देते हैं। इसी के आधार पर काव्य के, मोटे तौर पर, दो भेद हो जाते हैं-सुखानुभूति के काव्य और दुखानुभूति के काव्य। पाश्चात्य साहित्य-चिंतक एवं दार्शनिक अरस्तू ने इनका नाम क्रमशः कामदी और त्रासदी रखा है और अपने ढंग से इनका तर्कपूर्ण सैद्धांतिक विवेचन किया है। हिन्दी-साहित्य के जाने-माने आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी मूल अनुभूतियों की संख्या दो ही मानते हैं-सुख की अनुभूति और दुख की अनुभूति। मनुष्य के विकास की प्रक्रिया से गुजरने के क्रम में उसकी चेतना विकसित होती चलती है और विकसित चेतना सुखानुभूति और दुखानुभूति का कारण खोजती है। कारण जानने के पश्चात मन व मस्तिष्क में किस प्रकार इन अनुभूतियों से समृद्ध भावों और विचारों का उद्भव होता है, इसकी व्याख्या आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने निबंध संकलन 'चिंतामणि, भाग-1' में संकलित 'भाव व मनोविकार' नामक निबंध में बड़े तर्कपूर्ण ढंग से की है।

पहले कहा जा चुका है कि ज्ञानेंद्रियों का सीधा संबंध मन व मस्तिष्क से होता है। सांसारिक-वस्तुओं, दृश्यों या घटनाओं के संपर्क में आने पर ज्ञानेंद्रियाँ मस्तिष्क में इनका विंब प्रेषित

करती हैं और मन में इनका प्रभाव। मन सभी वस्तुओं, दृश्यों या घटनाओं से प्रभावित नहीं होता। मन उन्हीं चीजों से प्रभावित होता है जो उसे अच्छी या बुरी लगती हैं।

जो चीजें मन को अच्छी लगती हैं उनसे उसे एक प्रकार के आनंद की अनुभूति होती है। वह इस आनंद की अनुभूति कराने वाले दृश्यों, वस्तुओं या घटनाओं के स्रोतों को बनाए रखना चाहता है। यह बनाए रखने वाली इच्छा-शक्ति, आनंद की अनुभूति से चेतना-शक्ति की टकराहट के फलस्वरूप उद्भूत होती है। अपनी इसी इच्छा के चलते कवि-मानस इन स्रोत-स्वरूपों को उन चीजों से बढ़कर सजाना चाहता है-अपनी कल्पना-शक्ति के रचनात्मक उपयोग द्वारा।

कल्पना मस्तिष्क की विंब-विधायनी शक्ति है, अतः कविता की रचना-प्रक्रिया के इस पड़ाव पर-जहाँ मन को अच्छी लगने वाली चीजों को मस्तिष्क अपनी कल्पना-शक्ति के बल पर और सजाता है-मन व मस्तिष्क का मिलन होता है। मन को जो चीजें अच्छी लगती हैं उनके स्वरूपों का वर्णन करते समय मस्तिष्क अपने अंदर कल्पना-शक्ति के माध्यम से उन 'अच्छी-चीजों' को भी पुनरुज्जीवित कर लेता है जिनका विंब ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से वह पहले ही अर्जित कर चुका होता है। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कविता में सादृश्यमूलक अलंकारों का उद्भव होता है। उदाहरण के लिए जयशंकर प्रसाद और मीर तक्री 'मीर' की क्रमशः ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

मुख-कमल समीप सजे थे

दो किसलमय-से पुरइन के⁶

X X X

नाजुकी उसके लब की क्या कहिए

पंखुड़ी एक गुलाब की-सी है।⁷

नायिका के मुख की सुंदरता 'प्रसाद' को अच्छी लगी तो उनके मस्तिष्क में-सादृश्य के आधार पर-पहले से साक्षात्कारित कमल का विंब उभर कर सामने आ गया। मुख पर कमल के आरोपण से मुख की सुंदरता और बढ़ गयी, क्योंकि उसकी विशेषताएँ भी मुख के साथ जुड़ गयीं। इसी तरह नायिका के होंठ 'मीर' को सुंदर लगे तो उनके मस्तिष्क में गुलाब की पंखुड़ी का विंब उभर आया।

अतः स्पष्ट है कि मन को अच्छी लगने वाली चीजों से प्राप्त आनंदानुभूति की अभिव्यक्ति के समय मस्तिष्क की चेतना-शक्ति कल्पना का ज्यादा सहारा लेती है। क्योंकि मन व मस्तिष्क आनंदानुभूति प्रदान कराने वाली विभिन्न चीजों को बनाए रखना चाहते हैं, अतः एक के संपर्क में आते ही अन्य चीजें भी उनके सामने आ जाती हैं; और कवि इन विभिन्न चीजों की विशेषताओं को एक-दूसरे में आरोपित कर अपनी अभिव्यक्ति को भी उन्हीं के समान सुंदर बनाने की कोशिश करता है। ऐसी अभिव्यक्ति वाला काव्य सुखानुभूति वाले काव्यों की श्रेणी में आता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि व्यक्ति उन्हीं चीजों की कल्पना कर सकता है जिससे उसका साक्षात्कार हो चुका होता है। कल्पना-शक्ति की मौलिकता यहीं तक है कि वह पहले से साक्षात्कारित एकाधिक वस्तुओं, दृश्यों या घटनाओं को मिलाकर एक नई वस्तु, दृश्य या घटना का निर्माण कर सकती है-कल्पना जगत में।

जो चीजें मन को बुरी लगती हैं उनसे मन को एक प्रकार के दुख की अनुभूति होती है।

अतः मन व मस्तिष्क ऐसी वस्तुओं, दृश्यों या घटनाओं के अस्तित्व को मिटा देना चाहता है। यहाँ भी यह मिटा देने की इच्छा-शक्ति दुखानुभूति से चेतना-शक्ति की टकराहट के फलस्वरूप उद्भूत होती है। किसी के अस्तित्व को खत्म करने के लिए उस पर कड़ा प्रहार करना पड़ता है। इसीलिए कवि की चेतना-शक्ति ऐसी चीजों और इनके स्रोतों को मिटाने के लिए मन के अंदर विद्रोहात्मक भावों को जगाती है। और ऐसे भावों की अभिव्यक्ति ही क्रांतिधर्मा-काव्य को जन्म देती है। यद्यपि ऐसी वस्तुओं के स्वरूप की भयंकरता को दिखाने के लिए कवि-मस्तिष्क कल्पना का सहारा अवश्य लेता है पर यह सीमित होती है, और विद्रोह से प्रेरित भी -

रामराज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।

सूरत-सकल वही है भैया बदला केवल ढाँचा है।⁸

विद्रोह के तीखे होते जाने के क्रम में कल्पना का स्थान ऐसी कविताओं में नगण्य होता जाता है-

जितने हरामखोर थे कुर्बो-जवार में,

परधान बनकर आ गए अगली कतार में।⁹

स्पष्ट है कि मन को बुरी लगने वाली चीजों से प्राप्त दुखात्मक-अनुभूति की अभिव्यक्ति के समय मस्तिष्क की चेतना-शक्ति कल्पना का सीमित सहारा लेती है इसीलिए 'यथार्थवादी-काव्य' जैसा शब्द-गुच्छ अस्तित्व में लगाने की जरूरत पड़ी। अतः कहा जा सकता है कि मानव के मन की प्रकृति, सुख व दुख की अनुभूति और उससे प्रादुर्भूत भावों व विचारों की सामंजस्यपूर्ण अभिव्यक्ति के हिसाब से काव्य की प्रकृति मोटे तौर पर दो प्रकार की निर्धारित की जा सकती है - एक सुखात्मक-अनुभूति का काव्य और दूसरा दुखात्मक-अनुभूति का काव्य। काव्य की रचना-प्रक्रिया में इन अनुभवों से क्रमशः गुजरने और उबरने की प्रक्रिया भी शामिल होती है। दुखात्मक-अनुभूति वाले काव्य का ही एक भेद विद्रोहात्मक-काव्य होता है-यही क्रांतिधर्मा-काव्य होता है। दुख पहुँचाने वाले कारणों को चेतना जानने का प्रयास करती है और इस प्रक्रिया में किसी ऐसे अवांछित कारणों को पाकर जो व्यवस्था-द्वारा प्रयास करने पर घटित होने से रोके जा सकते थे, चेतना क्रांतिधर्मा हो जाती है और इस चेतना से लैस काव्य क्रांतिधर्मा-काव्य होता है। यह काव्य क्रांतिधर्मा इसलिए होता है क्योंकि यह किसी व्यवस्था को बदलने के उद्देश्य से लिखा जाता है। हिन्दी-साहित्य में कबीरदास, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, धूमिल 'दुष्यंत कुमार', अदम गोंडवी आदि क्रांतिधर्मा-कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्य के क्षेत्र में, चेतना के योगदान से विस्तारित अनुभूतियों की प्रकृति के अनुसार काव्य के अलग-अलग रूपों का सर्जन होता रहता है।

....

संपर्क-सूत्र :- शोधार्थी, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद।मो:9063277258

त्रिलोचन की चंपा

- डॉ. अरुण कुमार वर्मा

त्रिलोचन के नाम से प्रसिद्ध वासुदेव सिंह प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। कवि के रूप में धरती, गुलाब और बुलबुल, दिगंत, ताप से ताये हुए दिन, शब्द, उस जनपद का कवि हूँ, अरधान, तुम्हें सौंपता हूँ, चैती, अमोला, मेरा घर, जीने की कला आदि प्रसिद्ध रचनाओं का सृजन किया है। देशकाल, रोजनामचा, काव्य और अर्थबोध, मुक्तिबोध की कविताएं इनकी प्रमुख गद्य रचनाएं हैं। त्रिलोचन सादगी के कवि हैं। इनकी कविता में भावावेश के स्थान पर धरती की सौंधी महक प्रस्फुटित होती है। ये जीवन में निहित मंद लय के कवि हैं। इनके यहां आवेग और त्वरा की अपेक्षा बहुत कुछ स्थिर है। इनकी कविता की जड़े जीवन के गहरे अनुभवों से जुड़ी हैं। विवेच्य विषय 'धरती' संग्रह में संकलित 'चंपा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' कविता के प्रगतिवादी मूल्यों की पड़ताल करती हैं।

चंपा के साध्यम से कवि गांव की शिक्षा व्यवस्था पर अपनी संवेदना प्रकट करता है। चंपा को अक्षर ज्ञान नहीं है। कवि की संवेदना उसके साथ है। वह उसे अनपढ़ गंवार न कह कर सिर्फ इतना ही कहता है कि वह अक्षर को चीन्हती नहीं और उसमें और साक्षर व्यक्ति में सिर्फ अक्षर को चीन्हने को लेकर भेद है। कवि को पढ़ते देख उसे आश्चर्य होता है कि इन चिह्नों से कैसे स्वर निकला करते हैं। चंपा का आश्चर्य और जिज्ञासा उसकी अबोधता को दर्शाता है। उसकी अबोधता को कितनी सहजता से कवि ने अभिव्यक्त किया है। उसे शिक्षा के मायने पता होते तो निश्चय ही वह उसकी ओर अग्रसर होती -

“चंपा काले काले अक्षर नहीं चीन्हती
जब मैं पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है
इन काले चीन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं”

कवि लिखता हैं कि चंपा पढ़ सकती थी क्योंकि वह चंचल है, नटखट और कभी-कभी ऊधम करती है जो उसके उच्च मानसिक स्तर की पुष्टि करता है परंतु वह लिखता है कि सुन्दर ग्वाले की लड़की होने के कारण चौपायों को चराने उसे ले जाना पड़ता है। यदि उसे अवसर मिलता तो वह निश्चित पढ़ती-

“चंपा अच्छी है
चंचल है
नटखट भी है
कभी-कभी ऊधम करती है
कभी-कभी वह कलम चुरा देती है।”

कवि उसकी चंचलता को दर्शाकर उसकी बुद्धि की प्रखरता को बताने का प्रयास करता

है लेकिन वह स्वीकार कर ली है कि शिक्षा मेरे लिए नहीं है। राजेश जोशी की कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' बच्चे काम पर जा रहे हैं उनमें उनका कसूर नहीं है कसूर तो हमारी व्यवस्था का है। इतने नियमों के बाद भी शिक्षा का प्रसार उस स्तर पर नहीं हो पा रहा है। कवि आगे लिखता है कि क्या सारे खिलाड़ियों समाप्त हो गये हैं या खेलने के मैदान खतम हो गए हैं जो बच्चे काम पर जा रहे हैं। इसे प्रश्न की तरह आना चाहिए था कि बच्चे क्यों काम पर जा रहे हैं? नियम बन रहे हैं और व्यवस्था उसी गति से चल रही है। चंपा को शिक्षा की विशेषताओं का पता नहीं था। उसने गाय चराने और घर के कामों को करना ही अपनी नियति मान लिया था। अगर उसे भी उसके अधिकारों का पता होता तो कवि के पढ़ने के प्रस्ताव का प्रतिकार न करती है:

“तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है।”

चंपा की पढ़ने के प्रति धारणा यह दर्शाती है कि चंपा जिस समाज में रहती थी वह शिक्षा के महत्व से परिचित नहीं था या उन तक शिक्षा के महत्व का प्रसार नहीं था। कवि उसको समझाता है कि चंपा पढ़ लेना अच्छा है और गांधी बाबा की भी यही इच्छा है कि सब जन पढ़ना-लिखना सीखें। चंपा को लगता है कि गांधी बाबा तो कर्म को महत्व देते हैं आखिर कर्म तो मैं कर ही रही हूँ। तब वे पढ़ने की कैसे बात करेंगे-

“मैं तो नहीं पढ़ूंगी
तुम तो कहते थे गांधी बाबा अच्छे हैं
वे पढ़ने लिखने की कैसी बात कहेंगे।”

त्रिलोचन जी ने चंपा के माध्यम से बालिका शिक्षा की विसंगतियों के साथ-साथ किसान और कामगार परिवारों की बालिकाओं की समस्या को उकेरा है। निराला जी ने भी 'वह तोड़ती पत्थर' के माध्यम से समाज के सामने ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है कि जिसे स्कूल जाना चाहिए था वह सरेयाम सड़कों पर काम करने को मजबूर है। निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' की बात करें तो चंपा ज्यादा मुखर है। निराला जी उसकी संवेदनाओं को उकेरते हैं कि वह सामाजिक व्यवस्था से इस तरह त्रस्त है कि जैसे मार खाकर भी रोई न हो। अर्थात् रोने भी न दिया जा रहे हो। परंतु चंपा उस व्यवस्था में मस्त है क्योंकि वह उसके महत्व को समझ ही नहीं पा रही हैं। वह जिस दुनिया में जी रही है उसी को अच्छा मान रही है। निराला ने गुरु हथौड़े से प्रहार करते दिखाया है परंतु चंपा का संघर्ष नियतिवादी हो जाता है। कवि चंपा को पढ़ने के फायदे बताते हुए कहता है कि चंपा यदि नहीं पढ़ोगी तो कैसे अपने पति को पत्र भेजोगी या कैसे उसके पत्रों को पढ़ोगी। चंपा जवाब देती है कि मैं ब्याह ही नहीं करूंगी और यदि ब्याह हो भी गया तो पति को संग साथ रखूंगी। उसे कलकत्ता नहीं जाने दूंगी। कलकत्ते पर बजर गिरे-

“चंपा बोली तुम कितने झूठे हो, देखा
हाय राम तुम पढ़ लिख कर इतने झूठे हो
मैं तो ब्याह कभी न करूंगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूंगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूंगी
कलकत्ते पर बजर गिरे।”

कलकत्ते पर वज्र गिरने का भाव चंपा के नियतिवादी चरित्र को दर्शाता है। जब हम परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाते तो ईश्वर पर छोड़ देते हैं। चंपा भी चाहती है कि जब कलकत्ता ही नहीं रहेगा तो पति को कलकत्ता जाना नहीं पड़ेगा। चंपा को पढ़ना स्वीकार नहीं था लेकिन उसे पति को बाहर जाना भी स्वीकार नहीं था जो पूर्वाचल की प्रमुख समस्या है जहां पति अकेले ही कमाने जाता है। वह उसके साथ जाने की कल्पना भर करती है लेकिन जा नहीं पाती। उसकी यह दमित भावना वहां के गीतों में मुखरित होती है। प्रस्तुत कविता में भी चंपा का वह दर्द प्रमुखता से उभरा है। जो अन्य रचनाओं में भी देखने को मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इसका जिक्र किया है-

आगि लाग घर जरा बड़ा सुख कीन्ही।

पी के हाथ घड़लवा भरि भरि दीन्ही।।

पूर्वाचल के लोकगीतों में भी इस भाव की पुष्टि होती है-

जवने शहरवा क पिया मोर जइहंई

लागै अगिया शहर जरि जाई रे

इ रेलिया बैरन पिया के लेहे जाई रे”

कवि बहुत ही सहजता से चंपा के माध्यम से गांव की बहुत सारी चंपाओं की समस्या उठाता है। आज गांव में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा है परंतु कमोवेश किसान जीवन में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य नहीं पहुंच पाया है। शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन के बीच आज भी बहुत गहरी खाई है। गांव की एक बड़ी आवादी अज्ञानता और अभाव का जीवन जी रही है परंतु चंपा की तरह उसी को अपना सर्वस्व मानती है क्योंकि उसे और दूसरे जीवन के विषय में पता नहीं है। कविता शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करती है। यह इनकी प्रगतिवादिता का मूल तत्व है जो सिर्फ नारे के साथ नहीं चलती बल्कि सूक्ष्मता से कारणों का विश्लेषण करती है।

कवि ने बोलचाल की भाषा को चुटीला और नाटकीय बनाकर प्रस्तुत किया है। कविता की पृष्ठभूमि और संवाद योजना इतना आकर्षक और सरस है कि कविता बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करती है। अचरज, अच्छर, गोदा करते हो, बजर गिरे, काले चीन्हों से आदि देशज शब्दों से कविता का आकर्षण तो बढ़ ही जाता है साथ ही विषय को रखने, समझने संवेदना की सहज अभिव्यक्ति में भी इनका महत्व है। इनकी नाटकीयता का एक उदाहरण देखिए-

“चंपा बोली: तुम कितने झूठे हो, देखा,

हाय राम, तुम पढ़-लिख कर इतने झूठे हो”

कवि चंपा के माध्यम से गांवई जीवन की जटिलता को उकेरने का प्रयास किया है। इन्होंने उस जीवन को बहुत नजदीक से देखा है। किसान और मजदूर वर्ग की शिक्षा का स्तर आज भी काम चलाऊ है। वह अपनी दुनिया में मस्त है। उसके आगे वह जानता ही नहीं है। वहीं दूसरी ओर एक विशाल फलक है। विशाल सोच का दायरा है जिनकी नजरों में उनका जीवन पिछड़ेपन की निशानी है। आखिर इनके लिए जागरूकतना का आंदोलन कौन चलाएगा और चंपा कब तक कलकत्ते पर बजर गिरने की आस में रहेगी।

....

संपर्क-सूत्र :- पी जी टी (हिन्दी), जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, रीवा(म.प्र.)-486448

मो:9754128757

हिन्दी कहानी साहित्य में मोहनदास नैमिशराय का स्थान

- रश्मिरानी स्वाई

हिन्दी कहानी विधा के विकास क्रम को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के सभी मुद्दों में कहानी प्रवेश कर चुकी है। फिर भी एक स्थान जो रिक्त रह गया है वह है दलित जीवन।

गांधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम एवं सन् 1936 के आसपास हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिशील विचारधारा' का प्रवेश होने के कारण शोषित, स्त्री और मजदूरों के प्रति गांधीवादी सहानुभूति प्रकट करती हुई रचनाएँ लिखी गई। अतः निराला, यशपाल आदि की कहानियों में भूख, गरीबी और शोषण का अत्यंत दारुण चित्रण हुआ है। प्रेमचंद ही ऐसे कथाकार थे जिन्होंने पहली बार दलितों को अपनी कहानियों का विषय बनाया। वे समाज में दलितों के साथ होने वाले हर तरह के भेदभाव को, उसकी सम्पूर्ण पीड़ाओं और यातनाओं को अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त किए हैं। उनकी कहानियों में 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'दूध का दाम', 'पूस की रात', 'मंदिर' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद ने सिर्फ दलितों की यातना, गरीबी और दुर्दशा का ही चित्रण किया है। दलितों का संघर्ष, चेतना और अधिकार का चित्रण कहीं भी नहीं है। इनके कहानियों के चरित्र सिर्फ अपनी दुर्दशा, अपनी गरीबी का रोना ही रोते हैं न कि शोषण के खिलाफ लड़ते हैं न ही अपना अधिकार, अपनी आत्म सम्मान के लिए संघर्ष करते हैं। मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में "प्रेमचंद दलितों के जीवन से रु-ब-रु होते हैं, साझेदारी करते हैं, दलितों के प्रति सहानुभूति जगाते हैं, परंतु दलित चेतना को मंजिल तक नहीं पहुँचाते।"¹ प्रेमचंद की कहानियों के बारे में यह कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में कोई दलित चेतना नहीं बल्कि मानवीय करुणा और सहानुभूति की अभिव्यक्ति है।

प्रेमचंदोत्तर कहानी यौन संबंध, मानव-मानव के बीच बनते-बिगड़ते संबंधों और उनके बदलते मूल्यों की तलाश, परंपरा बोध और आधुनिकताबोध की टकराहट, सामाजिक-राजनीतिक गतिविधिओं से उत्पन्न मानवीय विकृतियों का भोगा हुआ यथार्थ, मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग और महानगरीय जीवन की यथार्थ को ही चित्रित करता है। समाज की इतनी सारी समस्याओं पर कहानी लिखी गयी और दलित समाज इन कथाकारों द्वारा नजरंदाज कर दिया गया। कहीं अगर दलित जीवन को लेकर किसी ने कहानियाँ लिखी भी तो उसमें दलित जीवन का चित्र तो खींचा पर उसमें कल्पना और कला का समावेश अधिक था। जब हम इस कहानियों का अवलोकन करेंगे तो मुख्यतः एक बात जो सामने उभरकर आती है, वह है करुणा। करुणा एवं सहानुभूति प्रकट करते हुए जो कहानियाँ लिखी गयी उसके चरित्रों को मजदूर, अपराधी, लाचार, दयनीय, वफादार नौकर या मालिक के लिए जान देनेवाला गरीब के रूप में चित्रित किया गया। सिर्फ इतना ही नहीं दलित पात्रों में सारी बुराइयाँ, अनैतिकता और दुर्गुण भर दिये गए। हरिनारायण ठाकुर के शब्दों में "कुछ अपवादों को छोड़कर गैर दलित कथाकारों द्वारा रचित कहानी और उपन्यासों के द्वारा दलित पात्रों के चरित्र एवं उनकी स्थिति-परिस्थितियों को विरूपित किया गया है। बेशक गैर-दलितों के लेखन में दलितों की यातना और दुर्दशा का चित्रण है, किन्तु संघर्ष और चेतना के स्वर का नितांत अभाव है। इन लेखकों ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध करने की कहीं कोशिश नहीं की है, उल्टे इनके लेखन से वर्ण-व्यवस्था की जड़ें और मजबूत हुई हैं।"² हिन्दी कहानी साहित्य के केंद्र में दलित समाज के लिए कोई स्थान नहीं दिया गया। इस कमी को पूरा करने के लिए दलित लेखक आगे आए।

मोहनदास नैमिशराय को हमेशा इस बात की शिकायत थी कि हिन्दी कहानी साहित्य में दलित चरित्रों का प्रभावशाली चित्रण क्यों नहीं है? अगर है भी तो सिर्फ उनकी यातना, दुर्दशा, अपमान और हीनताबोध। इसके अलावा और कुछ नहीं है। ये प्रश्न केवल प्रश्न ही बनकर रह जाते, अगर हिन्दी कथा साहित्य में नैमिशराय न आते। हिन्दी कथा साहित्य में पहली बार मोहनदास नैमिशराय ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन का यथार्थ, दलितों में पैदा हो रही चेतना एवं विद्रोह की भावना का प्रभावशाली चित्रण किया। उनकी कहानियों में दलित मानव की वेदना, उनका संघर्ष, सुविधाभोगी लोगों के प्रति उनका विरोध एवं अपने अधिकार प्राप्ति हेतु आत्म सजगता आदि का प्रभावपूर्ण चित्रण हुआ है। उनकी कहानियों के पात्र ऊर्जावान हैं एवं अन्याय के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं।

मोहनदास नैमिशराय का हिन्दी कथा साहित्य में प्रमुख कथाकार के रूप में आगमन भी एक ताजुब की बात है। मेरठ के एक दलित परिवार में जन्में, पले, बड़े जहां उन्हें कोई साहित्यिक परिवेश नहीं मिला था। ज्यादातर किताबें पास की दुकान से किराए पर लेकर पढ़ते थे। उन्हीं किताब के अध्ययन से नैमिशराय ने अपने लिए साहित्यिक परिवेश बना लिया और विद्यार्थी जीवन से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया। जातिगत भेदभाव के कारण पहले उनकी कहानी प्रकाशित नहीं हो पाई। पर वे हार नहीं माने। रचना कार्य जारी रखा। समाज के भांति साहित्य के क्षेत्र में भी दलित साहित्यकारों को साहित्य से बाहर रखने की कोशिश की गयी। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में “सातवें दशक में अनेक दलित रचनाकारों ने कहानी विधा को अपनाया। उस दौर की कहानियों को हिन्दी संपादकों ने प्रकाशित करने में विशेष रुचि नहीं दिखाई। फिर भी दलित कथाकारों ने हौसला नहीं खोया और रचनाकर्म को एक आंदोलन की तरह जारी रखा।”³

नैमिशराय ने अपनी बारीकी और गहरी दृष्टि के कारण हिन्दी कहानी जगत के उस कोरे पन्ने को पकड़ लिया, जो अब तक हिन्दी के किसी भी कहानीकार की नजर में नहीं पड़ी थी। सन् 1981 में अपनी ‘कर्ज’ कहानी से नैमिशराय ने हिन्दी कथा साहित्य के खाली स्थान को भरना शुरू कर दिया। नैमिशराय ने लगभग 37 कहानियाँ लिखी। इन कहानियों में ज्यादातर कहानियाँ दलित परिवेश, उनकी समस्याओं पर लिखी गयी हैं। उनकी कहानियों में दलित समाज की वास्तविक पीड़ा नजदीक से दिखाई देती है। नैमिशराय की कहानियों की विशेषता यह है कि वे दलितों में उत्पन्न चेतना और विद्रोह की भावना को पहली बार हिन्दी कथा साहित्य में प्रस्तुत करती है। उनसे पहले किसी लेखक ने ऐसी कहानियाँ नहीं लिखी। उनकी कहानियों के पात्र सिर्फ दुःख, बेवसी और गरीबी का रोना नहीं रोते बल्कि अन्याय के विरुद्ध लड़ते हैं, अपने हक के लिए संघर्ष करते हैं। इसका उदाहरण हम ‘आवाजें’, ‘रीति’, ‘कर्ज’, ‘हमारा जवाब’, ‘अपना गाँव’ आदि अनेक कहानियों में देख सकते हैं। इन कहानियों में दलित मानव की वेदना, प्रतिकूल स्थिति में जीने की विवशता के साथ-साथ सुविधाभोगी लोगों के प्रति विरोध की भावना और अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति हेतु आत्म सजगता जागृत हुई है। रुपचन्द गौतम के शब्दों में “सभी कहानियाँ दलित जीवन की घटना व दुर्घटनाओं पर आधारित हैं। पाठक केवल अपना रोना ही नहीं रोते बल्कि संघर्ष का रास्ता भी तय करते हैं। कहानियों के सामाजिक रिश्ते बड़े सलीके से प्रस्तुत किए गए हैं। भारतीय समाज में सामंजस्य हेतु पहल भी करते हैं।”⁴ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा दलितों को पहचान दिलाने की शुरुआत की है। उनकी कहानियों के पात्र सम्पूर्ण दलित समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। सदियों से चले आ रहे अन्याय के प्रति दलितों के मन में सुलगती आग और परिवर्तन की गूँज की सशक्त अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में हुई है।

नैमिशराय की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति उनकी सच्चाई है। कहानी के पात्र हो या घटनाएँ कुछ भी काल्पनिक नहीं है। उनकी कहानियाँ स्वानुभूति की कहानियाँ हैं। जो दुःख-दर्द को उन्होंने निजी तौर पर भोगा है उस की अभिव्यक्ति कहानियों के माध्यम से किया है। बाबासाहेब आंबेडकर उनके आदर्श थे इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों में बार बार दलितों के एकीकरण की बात की है। दलितों की शिक्षा पर भी जोर दिया है। उनकी इस मनोवृत्ति का परिचय 'जगिरा', 'तुलसा', 'अपना गाँव' आदि कहानियों में मिलता है। नैमिशराय ने दलित स्त्रियों के प्रति भी सहानुभूति व्यक्त की है। वेवाओं, वेश्याओं की मजबूरी, आए दिन दलित स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय, अत्याचार और बलात्कार जैसे समस्याओं को देखकर उनका मन तड़प उठता है। उनकी इस तड़प को 'मजूरी', 'भीड़ में वह', 'उसके जखम', 'रीत' आदि कहानियों में देख सकते हैं।

नैमिशराय ने हिन्दुओं के पाखंडों के साथ-साथ दलितों की दकियानुसियत का भी खुलकर खंडन किया है। उन्होंने जहाँ दलित समाज की संत्रास और पीड़ा का परिचय करवाया है वहीं उसी समाज में बड़े-बड़े नौकरी करने पर बन गए स्वार्थी वर्गों का भी असली रूप प्रस्तुत कर उनके प्रति व्यंग्य प्रहार किया है। जिसकी आवाज 'सिमटा हुआ आदमी' कहानी में सुनाई देती है। नैमिशराय ऐसे कथाकार हैं जो लगातार भ्रष्ट सरकार और राजनीति पर प्रहार करते रहें। सरकारी और राजनैतिक आधार पर दलितों के साथ हो रहे अन्याय का उन्होंने खुलकर विरोध किया है। जिसका उदाहरण 'जगिरा', 'गंजापेड़' आदि कहानियाँ हैं। दलित समाज की कोई भी समस्याएँ नैमिशराय की कहानियों से वंचित नहीं रहा है। उन्होंने दलित जीवन की हर एक पक्ष को अपनी कहानियों में उजागर करने की कोशिश की है। कमलेश सचदेव की ये बातें कहानी साहित्य में नैमिशराय की विषय वैविध्यता को स्पष्ट करने में सहायक होती है "उनका प्रमुख बल्कि एकमात्र सरोकार दलित वर्ग की पीड़ा को वाणी देना है। उनके साथ होनेवाली कोई भी ज्यादती उन्हें तड़पाकर रख देती है। अस्पृश्यता, दलित वर्ग की स्त्रियों के प्रति अत्याचार, आरक्षण-विरोधी आंदोलन, वर्ण-व्यवस्था की अन्य विसंगतियाँ, कुछ भी न उनकी दृष्टि से चूकता है और न कलम से।"⁵

हिन्दी कहानी साहित्य में नैमिशराय की अपूर्व योगदान को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नैमिशराय दलित समाज की तकलीफों, यातनाओं, त्रासदी एवं तनाव के लेखक हैं। वे मानवतावादी, भाईचारा, समानता और धर्मनिरपेक्ष के प्रचारक हैं। सीधे-सरल, प्रभावपूर्ण भाषा के धनी और दलित समाज के यथार्थ चित्रक हैं।

इस प्रकार नैमिशराय ने हिन्दी कहानी साहित्य को एक नई विषय वस्तु, एक नई मानसिकता प्रदान करके उसकी प्रगति के नए मार्ग खोल दिये हैं।

....

संदर्भ :

1. मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य पृ.सं.34
2. डॉ. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.सं.420
- 3.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ.सं.108
- 4.रूपचन्द गौतम, आजाद भारत में दलित, पृ.सं.144
- 5.मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, पृ.सं.11

...

संपर्क-सूत्र :- शोधार्थी (हिन्दी-विभाग), हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500046.

मो:9160182190

ओम नमो भगवते वासुदेवाय

- अभिनव भट्ट

ओम नमो भगवते वासुदेवाय। श्री कृष्णाय वासुदेवाय, हरये परमात्मने, प्रणतः क्लेश नाशय श्री गोविन्दाय नमो नमः।

स्नान करती अम्मा के इन्हीं बन्धों को सुनकर नींद खुली। 72 साल की अम्मा, गंगा की लहरियों से लय मिलाते हुए, प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त से विष्णु सहस्रनाम, गजेन्द्रमोक्ष आदि पाठ से अपनी दिनचर्या शुरू करती हैं।

वल्लभ के जागने का अलार्म होता है अम्मा का श्लोक। रातभर, बेटे विट्ठल का शरीर आग से भी तेज तपता रहा। रात गीली पट्टी बदलने में बीत गई, सुबह की ताजगी भी विट्ठल के बुखार सी तप रही थी। क्वार की धूप सिर चकरा देने वाली होती ही है। एक साल की नन्हीं जान से न जाने कौन सी परीक्षा विधाता लिये जा रहा था। दूसरी ओर, घर में बमशिकल एक वक्त का अन्न और बेटे के लिए दो पाव दूध था जिसका पैसा इन्दू की अम्मा ने नहीं लिया था। इसी दूध को शाम तक चलाना था। इसीलिए उतना ही पानी भी मिलाना जरूरी होता है।

अपने से बातें कर ही रहा था कि अम्मा नहाकर गुसलखाने से बाहर आई और पूछीं- वल्लभ, हमरे विट्ठल कैसे हैं? बुखार में आराम भया कि नहीं?

वल्लभ: नहीं, वैसे ही है, आज डाक्टर मैत्रा को दिखावे जाएंगे। पता नहीं का हो गवा है, समझ नहीं पा रहे हैं।

अम्मा: विट्ठल की जनमपत्री दिखाओ जाकर जोशी जी से !

वल्लभ: दिखावा उन्हें, वो बताइन हैं कि कुछ दिन का मारकेश है, आज की यदि रात टल गई तो एके कोई पूर्णायु होवे से कोई नहीं रोक सकता।

अम्मा: अच्छा, हे! ठाकुर जी, विट्ठल को ठीक कर दो।

अम्मा यह बड़बड़ाती ठाकुर कमरे में चली गई, भगवान जी को नहवाने। आठ जवान पट्टे जैसे बेटों में चार जवान पुत्र और महीने भर के एक पौत्र की असमय मृत्यु का बोझ लिए जीवित हैं, अम्मा। ठाकुर जी से विट्ठल के लिए बीत चुकी दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने की प्रार्थना विशेष रूप से होती है।

पीछे से विट्ठल की माँ की आवाज आई -

घर में अनाज और सब्जी नहीं है।

ठीक है, जाते हैं बाजार, लाते हैं कुछ, अनमयस्कता के साथ वल्लभ ने जवाब दिया।

घर में छह महीना पहले भीषण चोरी भी हो चुकी थी, जिसमें कुछ अपने ही शामिल थे, जिससे वल्लभ पूरी तरह टूट चुका था। वैसे, किसी तरह दिन की खुराक जुट गई और शाम आ गई।

रात करीब सवा ग्यारह बजे जब विट्ठल का बुखार बढ़ने लगा और आखें पीली पड़ने

लगीं तो उसे लेकर डाक्टर मैत्रा के घर पहुंचा। उन्होंने भी वही बात कही जो एक दिन पहले जोशी गुरुजी बोल चुके थे। उन्होंने दवा देते हुए कहा कि आज यदि यह बच्चा बचता है तो कल सुबह इसे लेकर मेरे पास आईएगा। मेरी पैर के नीचे से जमीन खिसक रही थी लेकिन अपने मन को मजबूत बनाना मेरा कर्तव्य था। कारण कि घर में एक बूढ़ी अम्मा और विट्ठल की माँ थी, मेरे टूटने से उन दोनों का हाल और बिगड़ता।

लगभग रात एक बजे विट्ठल को लेकर घर पहुंचा तो सबसे पहले अम्मा ही मिलीं। वह शायद पहली बार इतनी रात तक जगी रहीं। उन्हें सारी बात बताई। उसी समय विट्ठल रोने लगा। उसे भूख लगी थी। वल्लभ रसोई में जाकर उसके लिए ली गयी छोटी सी लुटिया में दूध निकाला और विट्ठल को पिलाने के लिए उसकी माँ को दे दिया। विट्ठल ने दो-तीन घूंट दूध पिया ही था कि अम्मा ने रट लगा ली कि वो भी दूध पियेंगी। पहली बार अम्मा ने किसी वस्तु के लिए हट किया था। उन्होंने अपने हठ में यह भी शामिल किया कि वो सिर्फ विट्ठल का बचा दूध ही पिएंगी। किसी तरह विट्ठल से दूध लेकर अम्मा के हाथ में दिया तो दूध की लुटिया उनके हाथ से छूट गई और दूध गिर गया।

एक तो ऐसे ही भगवान कंगाली की हालत में खड़ा कर दिया और उसपर से अम्मा ने बेटे का बचा दूध भी गिरा दिया। यह दृश्य देखकर वल्लभ को अपने आपको रोकना मुश्किल था। मैंने अम्मा से खीझते बोला, अब कहां से दूध लाई हम? अम्मा ने लाचारी भरी आवाज में कहा -

“अरे! हमसे, गलती हो गई का।”

इसके बाद अम्मा ने पत्नी से विट्ठल को लेकर ऊपर वाले कमरे में जाकर सोने को कहा। वो खुद ठाकुर जी के कमरे में चली गई। मुझे सख्त हिदायत दी कि आज, ठाकुर कमरा बंद नहीं होगा।

इसके बाद मुझे भी विट्ठल के पास भेज दिया। हमारे कानों में अम्मा के दो वाक्य सुनाई दे रहे थे। शालिग्राम जी से कह रही थीं कि-

“हमारे विट्ठल को ठीक कर दो। ओम नमो भगवते वासुदेवाय। ओम नमो भगवते वासुदेवाय।”

उनका यह संवाद बहुत रात तक चलता रहा। लगभग चार बजे उनकी आवाज धीमे-धीमे कानों में गूँज रही थी। उन लोगों का भी मन नहीं लग रहा था, इस कारण सब विट्ठल को लेकर नीचे उतर आए।

ठाकुर कमरे में देखा कि अम्मा अपने बिस्तर से अलग होकर, ठाकुर जी के सिराने लेटी हैं। विट्ठल अपनी मां की गोद से उतरकर अम्मा के ऊपर चढ़कर बैठ गया। उसकी चैतन्यता महीनों बाद देखने को मिली लेकिन उनके बीच ब्रह्मलीन हो चुकीं अम्मा का शरीर था और बचा था उनके आशीर्वाद स्वरूप विट्ठल का अनमोल जीवन। अम्मा का “ओम नमो भगवते वासुदेवाय” का ब्रह्मवाक्य, अब शब्द ब्रह्म बनकर आंखों के सामने घूम रहा था।

...

संपर्क-सूत्र :- एन.1/14 नगवा, लंका, वाराणसी-221005 मो:9451844838

‘मुंडा’ एवं ‘गोंड’ जनजातीय का तुलनात्मक साहित्य और सांस्कृतिक-मूल्य

- राठोड़ सुरेश

“सांस्कृति शब्द ‘सम’ उपसर्ग के साथ संस्कृत ‘की’ (डु) ‘कुं’ (त्र) धातु से बनता है। जिसका मूल अर्थ है- ‘साफ’ अथवा ‘परिष्कृत’ करना। आज की हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द ‘कल्चर’ शब्द का पर्याय माना जाता है। ‘संस्कृति’ शब्द का प्रयोग कम से कम दो अर्थों में होता है एक व्यापक और दूसरे संकीर्ण अर्थ में।”¹ संस्कृति और सभ्यता को पर्यायवाची मानने पर उन शब्दों के अंतरों पर भी विचार करना महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सृजन की वह प्रक्रिया होती है जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है। संस्कृति में मूल्य, मान्यता, चेतना, विश्वास, विचार, भावना, रीति-रिवाज, भाषा ज्ञान, कला धर्म, जादू-टोना आदि के वे समग्र मूर्त, अमूर्त स्वरूप संस्कृतियों में शामिल होते हैं जिसे मानव सृजित, भौतिक, जगत् से महत्व एवं सार्थकता प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना या उसे संक्षिप्त रूप में समझना अत्यंत कठिन है क्योंकि भारत के लंबे इतिहास में उसकी संस्कृति पर अनेक प्रभाव पड़ते रहे हैं। जिसके कारण उसका रूप ही परिवर्तित हो चुका है। प्रायद्वीप का यह जंबूद्वीप अनेक जातियों, धर्म तथा संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है। इन्हीं में से एक है आदिवासी-संस्कृति।

आदिवासी-संस्कृति की अपनी एक भिन्न और विशिष्ट पहचान है। इस संस्कृति के अंतर्गत समानता, बंधुता की भावना, उदात्त-विचार, समता और सबसे विचित्र लक्षण यह है कि प्रकृति के कोख से पैदा होकर उससे विशिष्ट नैकट्य संबंध बनाती है। इसमें प्रकृति-प्रेम विद्यमान है जो अन्य संस्कृतियों से इसे अलग एवं विशिष्ट प्रदान करना है। आदिवासी जीवन में मनुष्य-जीवन प्राकृतिक एवं साधारण है। उनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी और विचारधारा ‘जिओ और जीने दो की है’। उपयोगिता के साथ-साथ उनकी कार्य-चेतना सामूहिक-सहभागिता, सहयोगिता एवं अनुशासन पर टिकी हुई है। प्रकृति का नियम है कि ऐसी व्यवस्था जाति, के मानसिक एवं स्वाभाविक गठन को प्रभावित करती है। आदिवासी-चेतना के अंतर भाव में प्रकृति के नियम के अंतर्गत संग्रह का उपेक्षा, त्याग, प्रतिरोध, दया, समाधि का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज के जीवन की आवश्यकताएँ सीमित हैं। वस्तु-धन, संग्रह की भावना इनकी संस्कृति में नहीं पायी जाती है। यह प्रकृति के सहचर और पुजारी हैं। इनके धार्मिक-स्थल कोई मंदिर-मस्जिद या विशिष्ट स्थान न होकर खुला आकाश होता है। वह कहीं भी अपनी उपासना-आराधना पूजा पाठ कर सकते हैं। आकाश और धरती की यह व्यापक संरचना ही इनका मंदिर और गिरजाघर है। आदिवासी संस्कृति एवं प्रकृति में गहरा

आत्मीय संबंध है। तभी तो प्रकृति प्रदत्त उत्सव को आदिवासियों ने अपने जीवन से जोड़ लिया है। जबकि सभ्य कहे जाने वाले विकसित संस्कृति से प्रकृति का संबंध संघर्ष का रहा है। फलतः वह प्रकृति का दोहन चाहते हैं। अब रक्षण का विचार महज भौतिक उपयोगितावादी सार है। वर्तमान युग में इनका संबंध केवल भारी वैज्ञानिक विकास, औद्योगिक और वाणिज्य का है।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के साहित्य में चित्रित संस्कृति :

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में आदिवासी समाज, संस्कृति एवं संघर्ष का चित्रण हुआ है। भारत में समग्र रूप से 450 से अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं। जिनमें मुंडा और गोंड प्रमुख हैं। बिरसा मुंडा के 'मुंडा' समुदाय और कोमरम् भीम के 'गोंड' समुदाय दोनों की संस्कृति में समानता है। इन दोनों का साहित्य मुंडा समुदाय और गोंड समुदाय पर आधारित है। भारत में मुंडा और गोंड जाति में भी अनेक उपजातियाँ हैं और उनकी सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक आस्थाएँ तथा संस्कृति में कुछ समानताएँ होते हुए भी भिन्नताएँ हैं। इन आदिवासियों की संस्कृतियों को नष्ट करने का प्रयास कई सालों से होता आ रहा है। फिर भी यह संस्कृति जीवित है। अनेक परिस्थितियों की चुनौतियों का सामना करते हुए मुंडा और गोंड समाज की संस्कृति जीवित है। उनके गीत, त्योहार उनकी चेतना को बनाते हैं। इसे 'जंगल के दावेदार' 'कोमरम् भीम' उपन्यास में लोकगीतों के द्वारा देख सकते हैं। लोकगीत के संदर्भ में 'धरती आबा' नाटक का एक उदाहरण है-

“डिमिक डिमिक डिम माँदर बोले

नाचे धरती जंगल नाचे

पाँख खोल के पंछी नाचे

झिर झिर बहती नदिया नाचे

परबत उपर झरना नाचे

आबा आबा मुंडा बोलें

डिमिक डिमिक डिम माँदर बोले

माथे पकड़ी धोती पहने

आबा आए आबा आए

दिकू काँपे साहेब काँपे

चुटिया राँची सब थराए

मुंडा संग मुंडानी नाचे

डिमिक डिमिक डिम माँदर बोले।”²

भूगोलवेत्ताओं के अनुसार छोटा नागपुर भारत की सबसे प्राचीन भूमि है। मुंडा इस प्रदेश में रहने वाले हैं इसलिए मानवशास्त्री इन्हें अधिक प्राचीन आदिवासी बताते हैं। पुराणों तथा स्मृतियों

में दोनों जातियों का उल्लेख मिलता है। और रहन-सहन कई हजार वर्ष पुराना है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से आदिवासी हिन्दुओं में गिने जाते थे। तथा यह अपने प्रदेशों में शासन करते थे। दोनों समाज आज भी असभ्य स्थिति में जी रहे हैं। लज्जा निवारण हेतु एक कमर में कपड़ा लपेट लेते हैं। भारत में भारतीय जनजातियों में मुंडा की संख्या अधिक है वह मुख्य रूप से झारखंड, छत्तीसगढ़, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि क्षेत्रों में निवास करते हैं।

भारत में गोंडों की आबादी सर्वाधिक है। लेकिन आदिलाबाद (तेलंगाना राज्य) जिले में इनकी आबादी उस अनुपात में नहीं है। तेलंगाना (हिन्दी-तेलुगु) राज्य के आदिलाबाद जिले में गोंड रहते हैं। जो खेती पर निर्भर रहते हैं। दोनों जनजातीय साहित्य में सांस्कृतिक उभार के साथ-साथ संस्कृति पर आने वाले संकट को भी दर्शाया गया है। आदिलाबाद में निवास करने वाले गोंड जाति के लोग आजकल तीर, धनुष, कुल्हाड़ी, भाला आदि सभी उपकरण का प्रयोग अपने जीवन विकास में कर रहे हैं। गोंड जाति के लोग अपने शरीर को आभूषणों से सजाते हैं। गोदना एक उनकी सामाजिक विशेषता है।

दोनों जनजातियों पर रचित साहित्य में, चित्रित संस्कृति में साम्य-वैषम्य हैं। विवाह प्रथा एक गोत्र में विवाह न होना, विवाह में वर वाले, वधू के घर जाते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक परंपराओं में भी लक्ष्य समानता है। वह निम्न प्रकार है। दोनों जनजातीय साहित्य में धार्मिक आस्थाएँ, विशिष्ट जीवन प्रणाली, सामूहिक अनुशासन पद्धति, नैतिकता एवं ईमानदारी, प्रकृति से घनिष्ठ संबंध, पर्व-त्यौहार, पशुपालन-प्रवृत्ति तथा अतीत का गौरव गान विशेषताओं का चित्रण हुआ है।
आदिवासी धार्मिक आस्थाएँ :

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में हम देख सकते हैं कि मुंडा जाति और गोंड जाति में धार्मिक आस्थाओं, पूजा-पाठ में विभिन्नता दिखाई देती है।

साधारणतः माना जाता है कि धर्म एकता पर आधारित पवित्र धारणा की परिकल्पना है। मुंडा और गोंड जनजाति पशु-बलि पर भरोसा करती है। वह मानते हैं कि ईश्वर, भगवान को बलि देने पर वह हमारे समाज को सुखी रखेगा। ऐसा विश्वास और अवधारणा ही धार्मिक कर्मकांडों अथवा प्रगतिशील नैतिक तत्वों को जीवंत रखते हैं। धर्म, प्रकृति, ईश्वर के प्रति ऐसा विश्वास है जिसे कभी प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यह विश्वास एवं प्रगति और क्रियाओं का ऐसा जोड़ है जो पवित्रता के धारणा के साथ जुड़ा है। आदिवासियों के विश्वास, देवी-देवता और क्रियाएँ अन्य समाज से भिन्न है। 'कोमरम् भीम' में चित्रित 'गोंड' समाज भी उसी प्रतीकात्मक देवता के पूजा के समय बलि देता है। उनका भी विश्वास है कि 'भीम देव' को बलि देने पर फसल अच्छी होती है। वर्ष में एक बार यह बड़ा देव के पूजा करते हैं। जो सामूहिक रूप से होती है। मुंडा जनजातीय का एक उदाहरण- "वही थे लड़का और लड़की-उनको हुआ एक बेदा। लड़का तो बीमारी से मरने-मरने को हो रहा था। वे आदि मुंडा नर-नारी सोच में परेशान थे। ...बेदा! तो मरा जा रहा,

देवता तुम्हें छोड़कर किसे पुकारें? इसके लिए दरवाजा घेरकर, चौखट के पास कोयले से तस्वीर बना। देखेगा कि बीमारी भाग जाएगी। मेरी पूजा दे। सफेद मुर्गी की बलि देकर पूजा दे। वही पूजा देकर लड़के की बीमारी दूर हुई।”³

दोनों आदिवासी समाजों में व्याप्त जादू-टोना एवं भूत-प्रेतों पर विश्वासों पर विशेष दृष्टि जाती है। क्योंकि भूत-प्रेत की मान्यता उनके अनुसार आस-पास ही निवास करती है यह दोनों समाज जादू टोना में अधिक विश्वास करते हैं।

ईमानदारी और नैतिकता :

आदिवासियों की दृष्टि ‘जियो और जीने दो’ में विश्वास करती है। ये अपने नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने हेतु प्राणों को दाँव पर लगा देते हैं। लेकिन अपनी पारंपरिक नैतिकता का उल्लंघन करना उनके वश के बाहर होता है। वे अपनी बात के पक्के होते हैं। आधुनिकता के साये में एक वचन के नैतिक मानदंड टूटते चले गए हैं। इसलिए आज नैतिकता एवं आशाएं दबाव में है। कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य में आदिवासी का एक संदर्भ है जिसमें आदिवासी जन्म-जन्मों तक अपनी बातों पर टिके रहने का विश्वास दिलाता है-

“जो लिया है वह तो सही है। गोंड कभी भी झूठ बोला है! हमारी जाति में अभी झूठ नहीं आया है साहूकार! अब तक पाँच वर्षों से साल में बीस किंटल ज्वार लेकर हमारे मुँह में मिट्टी फेंक जाते हों।”⁴ कहने का आशय यह है कि आदिवासियों के संस्कृति एवं सामाजिक रीति-रिवाजों तथा नियमों में ईमानदारी, नैतिकता और आस्था का बड़ा महत्व है। वह अपने प्राणों को त्यागने को तैयार हो जाते हैं लेकिन नैतिकता त्यागने को नहीं। नैतिकता का एक रूप है अतिथि का सत्कार। भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि ‘अतिथि देवो भवः।’ आदिवासी खुद भूखे रहकर अतिथि के सत्कार में लगे रहते हैं।

प्रकृति से लगाव :

आदिवासियों का इतिहास साक्षी है कि उनका संबंध अन्य जातियों से अधिक जंगल से है। ये प्रकृति के पुजारी हैं। ये प्रकृति पर अधिक-से-अधिक निर्भर रहते हैं। आदिवासियों की विशेषता है कि- प्रकृति से प्राप्त जीवन आवश्यक साधन सामग्रियों से अपना जीवन व्यतीत करना उनके जीवन की एक सामान्य प्रवृत्ति है। ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास का नायक कोमरम् भीम जंगल से ही खेलना, गाना, सीखा है। “दुख ने भीम को अपने में डुबो लिया है...। वह जंगल है जिसमें खेलना-गाना सीखा है। एक-एक पेड़ को वह जानता है। अपने मित्रों के साथ-खेल क्रीड़ा में गाए हुए गीत के दिनों बारीश के छींटों में थरथराता हुआ, पत्थरों की आड़ में, बैठे दिन सूर्योदय के समय चुने गए महुआ, उनके पेड़, तालाब, टीला, पक्षियों का झुंड...आदि-आदि स्मृति में छा गए।”⁵

इस प्रकार प्रकृति से उदार संबंध बनाना केवल आदिवासी जानते हैं। ‘यह प्रकृति को

अपनी माता तथा आकाश को पिता मानते हैं। उनके दिन का आरंभ प्रकृति से होता है, रात की शुरुआत भी। जीवन का आरंभ पेड़, पक्षियों तथा हवा के झोंकों से होता है। जीवन का अंत भी उसी प्रकृति में शामिल हवाओं के साथ शांति के साथ होता है।’

वे प्रकृति का सम्मान करते हैं वे प्रकृति की गोद में आनंद, मंगल का अनुभव करते हैं। प्रकृति उनकी सहचर है। प्रकृति की हलचल एवं भविष्य के आने वाले सुखात्मक भविष्यवाणी के प्रकृति ज्ञान से ही प्राप्त कर लेते हैं। हमें यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि उनकी भविष्यवाणी गलत होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि- जंगल-जानवरों से अधिक संबंध बनाते हैं। प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने कि उन्हें आवश्यकता होती है। प्रकृति का अतिक्रमण करके आज के आधुनिक समाज ने अनेक समस्याएँ पैदा की हैं। लेकिन आदिवासी समाज कभी प्रकृति संतुलन को ठेस पहुंचाने का दुष्कार्य नहीं करता। वे जंगल से, अपनी ईंधन आवश्यकता की पूर्ति हेतु सूखी लकड़ी इकट्ठा करते हैं लेकिन गैर-आदिवासी समाज पेड़ों को काट कर सूखी लकड़ी बनाते हैं। आज प्रकृतिक परिस्थिति मानव विकास एवं विश्व प्रगति के विपरीत खड़ी हो चुकी है। विश्व प्रकृति से संबंधित सभी सम्मेलनों में चिंता व्यक्त की जा रही है कि प्रकृति का दोहन हो रहा है उपाय खोजा जा रहा है कि ‘किसी-न-किसी रूप से प्रकृति दोहन का संतुलन बनाया जाए।’ ऐसे समय में आदिवासियों की जीवन-दृष्टि और प्रकृति के बारे में उनके ही विचारों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

विवाह एवं त्योहार :

आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना में बहुत अंतर होने के कारण उनके पूजा, पर्व, त्योहार किसी गैर-आदिवासी समाज के लिए आश्चर्यजनक हैं। भिन्न-भिन्न आदिवासी समुदाय में भिन्न-भिन्न विवाह प्रथा प्रचलित है। ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में चित्रित समाज में विवाह माता-पिता की अनुमति से ही होता है। लड़का एवं लड़की परिवार पर अधिक आश्रित होता है कि वे किस लड़की को अपनी गृहलक्ष्मी बनाते हैं। लड़कियों के पिता केवल अपनी लड़कियां देने अथवा न देने में स्वतंत्र है। दहेज के रूप में कुछ-न-कुछ देना होता जिसे ‘ओले’ कहा जाता है। ओले लड़के पक्ष वाले लड़कियों को देते हैं।

बिरमा मुंडा के मुंडा समुदाय में विवाह एक उत्साह की विधि मानी है। इस समुदाय में पिता चाहे पुत्रों को उसके विवाह के बाद अलग कर सकता है। लड़कों की शादी हल चलाने आने के बाद की जाती है और लड़कियों की ताड़ पत्तों से चटाई बनाना सीखने के बाद। विवाह बाहरी गोत्र में होता है। बहु-विवाह को भी सामाजिक मान्यता प्राप्त है। विवाह की कई प्रथाएँ प्रचलित हैं जैसे राजी-खुशी विवाह, हरण विवाह, प्रेम विवाह आदि। वधू मूल्यों में ‘कुरीगोनोंग’ अर्थात् दहेज की व्यवस्था प्रचलित है। विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष के द्वारा भेजा जाता है।

मुंडा आदिवासी गाँव में युवाग्रह होती हैं। ये उसे ‘गितिओड़ा’ कहते हैं। इसके भवन के दो भाग होते हैं। एक में गाँव के कुंवारे लड़के होते हैं और दूसरे में कुंवारी लड़कियाँ। नृत्य-संगीत

के समय एक साथ होते हैं। गाँव की बूढ़ी औरतें इन लड़कियों पर नजर रखती हैं। प्रेम-विवाह पर रोक नहीं है लेकिन अपने से निम्न आदिवासियों के साथ वैवाहिक संबंध आमतौर पर नहीं बनाए जाते। 'गितिओड़ा' की तरह गाँव का दूसरा चर्चित स्थल है- 'सरना' या 'पूजा-पाठ' जैसे कार्यक्रम संपन्न होते हैं।

यह 'गितिओड़ा' के प्रकार से 'घोटुल' व्यवस्था की तरह मिलता-जुलता है। इसमें कोई विशेष अंतर नहीं है। कोमरम् भीम की गोंड जनजाति में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। लेकिन मध्य भारतीय गोंड जनजाति के गोंड समाज पर आधारित उपन्यास 'जंगल के फूल' में राजेंद्र अवस्थी ने घोटुल-व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख किया है।

दोनों साहित्य में त्योहार भी अलग-अलग हैं। इनके त्योहार, प्रकृति के मौसम के अनुसार होते हैं। 'कोमरम् भीम' उपन्यास में आकाड़ी, दिवाली, नागोबा का पूजन, फसल पूजन, भीमदेव पूजन, आदि अनेक त्योहार होते हैं। इसी से संबंधित उनके समाज मेले को भी त्योहार के रूप में देखते हैं। कोमरम् भीम के गोंड समुदाय में विशेष कर केसलापुर का नागोबा मेला, जंगूवाई मेला, खामदेव मेला भी महत्त्वपूर्ण है। इन त्योहारों में गोंड समुदाय के लोग नाच-गाना भी करते हैं। मुंडा समुदाय में भी अलग-अलग त्योहार मनाया जाता है। वहाँ स्त्री-पुरुषों की असमानता की खाई बहुत कम है।

आदिवासी समाज में त्योहार, विवाह बहुत उत्साह और खुशी के साथ मनाये जाते हैं। आज भारत देश में पाश्चात्य-संस्कृति का अधिक मात्रा में प्रचलन हो रहा है। और इसे लगभग सभी रूपों में स्वीकार किया गया है। लेकिन आदिवासी समाज पर इस पाश्चात्य संस्कृति का इतना प्रभाव नहीं हुआ है। आदिवासी समाज पहले जिस तरह से त्योहार मनाता था आज भी उसी उत्साह और उल्लास के साथ त्योहार मनाता है। उनके त्योहार अधिकतर प्रकृति से संबंधित होते हैं। उनके दैनंदिन जीवन में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए वह प्रकृति को ही भगवान के रूप में पूजते हैं।

झारखंड के आदिवासी समाज में अनेक पर्व एवं त्योहार मनाये जाते हैं। मुख्य रूप से झारखंड में दो त्योहार 'करमा' और 'सरहुल' मनाया जाता है। विशेष बात यह है कि किसी भी उत्साह, नाच, गाने में सभी लोग समान रूप से भाग लेते हैं। कोई भी पर्व त्योहार हो यही सहभागिता आदिवासी संस्कृति की अपनी विशेष पहचान बनती है। संधाल, मुंडा, हो आदि जनजातियों में यह देखा गया है कि एक पर्व को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। 'सोहराय' संधालों का सबसे बड़ा त्योहार है। जिसकी शुरुआत आषाढ़ महीने से होती है। आदिवासी समुदाय में अधिकांश पर्व एवं त्योहार फसलों की कटाई के बाद मनाएँ जाते हैं। इसके बाद अच्छी फसल हो इस उद्देश्य से देवी-देवताओं, पूर्वजों एवं गोधन की पूजा की जाती है। यह त्योहार पाँच दिन तक मनाया जाता है।

करम पर्व :

करम पर्व आदिवासियों का महान पर्व है। यह पारंपरिक रीति रिवाजों से मनाया जाता है। भादो शुक्ल एकादशी के एक सप्ताह के पूर्व से इसकी तैयारी शुरू हो जाती है। यह प्रदेश के अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जनजाति अपने विधि विधान के अनुसार पूरे उल्लास के साथ करम पर्व मनाते हैं।

आदिवासी समाज प्रकृति के उपासक होते हैं इन्हीं वृक्षों की पूजा आदिवासी समाज करता है यानि कि पर्यावरण की रक्षा की आदिवासी समाज के हाथों से होती है। इस समाज में सप्ताह का एक दिन गुरुवार को लक्ष्मी का दिन माना जाता है। इस दिन महिलाएँ उपवास रखती है और साल वृक्ष में कासे के लोटे से जल अर्पण कर सुख-समृद्धि की कामना करती है। पंचांग के अनुसार भादो एकादशी में मनाया जाने वाला करम पर्व में उपवास रखने वाली युवतियाँ आठ दिन पहले नदी से बालू लाकर नये बांस की टोकरी में अनाज के दाने, धान, गेहूँ, चना, मकई इत्यादि का जावा उगाती है। यह जावा हरियाली का प्रतीक है।

आदिवासी समाज का रिश्ता प्रकृति से जुड़ा होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हर विधि विधान में अलग-अलग प्रकार के पत्तल, दोना बनाएँ जाते हैं। यह समाज उसी की पूजा करता है। जिससे जीने के लिए हमें अन्न, जल, वायु मिलती है। जल-जंगल-जमीन आदिवासियों की पहचान है। इस समाज के दो महान पर्व है करमा और सरहुल, इसकी देवी सरना है। जो वृक्षों में ही निवास करती है।

दंडारी उत्सव :

‘दंडारी’ का अर्थ गोंड भाषा में ‘सामूहिकता’ है। यह त्योहार दशहरा से लेकर दिवाली तक मनाया जाता है। लेकिन प्रमुख रूप से दिवाली से 8 दिन पहले शुरू होता है। इस त्योहार के अवसर पर गोंड आदिवासी अपने समग्र वाद्ययंत्रों को बजाते हुए नाचते, गाते हैं। यह त्योहार आषाढ़ महीने में मनाया जाता है। वह इस त्योहार के लिए अपने पारंपरिक वेशभूषा में सजते हैं। इस अवसर पर यह मोर पंख से बना हुआ मुकुट पहनते हैं, अपने समग्र खुले बदन को सफेद मिट्टी या चूना लगाते हैं और पैरों में घुंघरू बांधते हैं। दायी भुजा पर हिरण का चमड़ा होता है और बाए हाथों में ‘रोकली’ पकड़कर नाचते हैं।

वह सभी गाँव के केंद्र को साफ-सुथरा करते हैं और वहाँ अपने एक घर की सभी वस्तुएं लाकर सजा देते हैं। और उसे धो देते हैं और उसकी पूजा करते हैं। यहाँ पर वे संप्रदाय के रूप में पूजा करते हैं। और अपने भगवान को सामूहिक रूप से विनती करते हैं कि भगवान उन्हें खुश रखें। उन पर कोई संकट ना आने दे। उसी के साथ वह अपना बाजा, गाना शुरू करते हैं इसी को ‘गुस्साडी’ नृत्य कहा जाता है। वह केवल अपने गाँव में ही त्योहार नहीं मनाते हैं बल्कि आस-पास के गाँव

जाकर भी वे त्योहार मनाते हैं। अपने समाज, बांधवों को परंपरा जारी रखने को संदेश देते हैं और उनका विश्वास बढ़ाते हैं। अपने भगवान के प्रति श्रद्धा भाव रखने का संदेश देते हैं। उनमें यह धारणा है कि उनके हाथों में 'रोकली' होती है। उस रोकली को अगर कोई रोगी स्पर्श करता है तो उस रोगी का रोग दूर हो जाता है। इस बात पर उनका बहुत विश्वास है। इस बहाने समग्र गाँव से मिलते-जुलते हैं और इससे अनेक रिश्तों में अटूटता बनी रहती है।

इसी प्रकार गोंड समाज में दूसरे त्योहार भी मनाए जाते हैं। जिनमें कोवंग, आकाड़ी, बडुगा, अकेपेन्क(बड़ा भगवान), भीम देव और जंगूबाई आदि की पूजा आराधना करते हैं। 'कोमरम् भीम' उपन्यास में अकाड़ी त्योहार का स्पष्ट उल्लेख किया गया है जिसमें गोंड आदिवासी बीज बोन के पहले मनाते हैं। इस अवसर पर बलि भी देते हैं।

संस्कृति और संघर्ष :

विरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखित साहित्य में अपने जाति को एकत्र करना, संगठित रखकर संघर्ष करने की प्रमुख प्रवृत्ति है। दोनों भाषाओं के साहित्य में वे अपने अस्तित्व के लिए लड़ते हैं। भोले-भाले आदिवासी जानवरों की भाँति बंदूकों का शिकार होते हैं।

लेकिन संघर्ष में इनकी हार होती है। क्योंकि नैतिकता ही आदिवासियों की कमजोरी बन गई है। अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं परिस्थितियों से घिरा आदिवासी समाज बेचैन है। अपने स्थितियों को सुदृढ़ करने हेतु तथा अपनी पहचान बनाने हेतु दोनों समुदायों में एक सामान्य सभा होती है। जिसमें सभी मिलकर अत्याचार और शोषण के विरुद्ध लड़ने का निर्णय लेते हैं। लेकिन संघर्ष बिना नेतृत्व के नहीं होगा। इस सभा में कोमरम् भीम का व्याख्यान संदर्भ देने योग्य है-

“हे किसानों! आप सभी की ओर से बोलने हेतु मुझे मेरे काकाओं ने देवडम (गाँव का नाम) से ले आए हैं...मैं आप लोगों से बड़ा नहीं हूँ। अधिक जानकार भी नहीं हूँ। मैं भी आप लोगों की तरह ही अपना यह किसानी जीवन कितने कष्टों से घिरा है, अनुभव किया हूँ...मैं जो कहता हूँ उसे ध्यान से सुनिए। हमने जंगल काटे हैं किसलिए। सरकार और पट्टेदार हमारे इस कार्य को कानूनी गलत साबित कर रहे हैं। यह कैसी बात? मेरे बचपन की बातें याद आ रही हैं। जो मुझे मोतिराम द्वारा कही गई हैं...माँ बालक को दूध न पीने देने पर क्या हम रुक गये थे? नहीं। उसी तरह जंगल न काटते तो क्या हम जी सकते थे? इसलिए हम उनके केस लगाने पर भी, जेल में बंद कर देने पर भी, हाथ काट देने पर भी, हम जंगल काटते ही आ रहे हैं...। मेरे काका कुर्दु, येसु आप सभी जानते हैं और पता नहीं कितनी जिंदगी देखे होंगे। इसलिए इन्होंने सभी को एक कर यह बारह गाँवों की स्थापना की। ...अंततः जंगल काटने का अंतिम निर्णय हुआ। शाम हो गई।”⁶

इसी प्रकार की समस्या विरसा मुंडा के साहित्य में चित्रित हुई है। विदेशी इनके जंगलों और खेती पर अपने अधिकार जमाने की योजनाएँ बना रहे हैं। यह अपने मिट्टी को प्राणों से भी अधिक

प्रेम करते हैं। विदेशी ताकतों एवं शोषण की आँच अपने अस्तित्व पर आते देख कई आदिवासी समूह मिलकर सभा का आयोजन करते हैं। अपने अधिकार हेतु मुंडा आदिवासी किसी भी स्थिति का सामना कर सकते हैं। ये परिस्थिति से निर्धन होते हैं लेकिन आत्माभिमान से बहुत अमीर होते हैं। ये अपने अस्तित्व को बचाए रखने हेतु प्रकृति की अनेक आपदाओं और विकट परिस्थितियों का सामना करते हैं।

अस्तित्व के लिए लड़ने वाले आदिवासियों का इतिहास गौरव पूर्ण रहा है। लेकिन इतिहास कार उन्हें योग्य स्थान नहीं दे पाए। उनको 'असुर' कह कर 'दुर्लक्षित' किया गया। इसका विस्तृत चित्रण 'ग्लोबल गाँव के देवता' में हुआ है। आदिवासी की संस्कृति एवं परंपरा तथा इतिहास गौरव गाथाओं का गलत व्याख्याओं का असर यह हुआ कि समग्र भारत की व्यापक आदिवासी एकता और समाहित सामाजिक व्यवस्था टूटती गई। कोमरम् भीम कहते हैं कि 'हमको इस जमीन के लिए राज्य के लिए, लड़ना है। इस लड़ाई में हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं होगा। जिनकी मृत्यु होगी। उनका स्थान इतिहास में विराजमान रहेगा। इस लड़ाई में हमारी पराजय हो जाने पर भी इस पराजय का कारण खोजने की कोशिश आने वाली पीढ़ी करेगी। ...और अंतिम विजय तो निश्चित रूप से प्रजा की ही होती है'। इस प्रकार गोंड जनजातीय संघर्ष पर 'कोमरम् भीम' के उपन्यास में एक लोक-गीत है-

“कुसे कूकू...कूकू...	-	कोयल का बोलना कू...कू
केड़ा मावई कू...कू	-	जंगल हमारा कू...कू
बीड़ू मावई कू...कू	-	बंजर जमीन हमारी कू...कू
गोंड राज्यम् कू...कू	-	गोंड राज्य कू...कू
मैसीवाकट कू...कू	-	जीतकर आयेंगे कू...कू
तुड़ू अंकत कू...कू	-	नगाड़े बजायेंगे कू...कू
सच्चुला देशम् कू...कू	-	पूरा देश कू...कू
लड़ाई गोत्वना कू...कू	-	आंदोलन जितना कू...कू
मैसीवाकट कू...कू	-	जीतकर आयेंगे कू...कू
कुसे कू...कू...कू...कू...	-	कोयल का बोलना कू...कू' ⁷⁷

निष्कर्षतः यहाँ कहा जा सकता है कि बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों आदिवासी के अंतर्गत आनेवाले महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। दोनों अपनी संस्कृति को बचाने हेतु हर हमेशा प्रयत्नशील रहे।

...

संदर्भ-ग्रंथ :

1. bharatdiscovery.org/India/संस्कृति
2. धरती आवा (नाटक), हृषीकेश सुलभ, राजकमल, नई दिल्ली, 2013 पृ.सं.59-60
3. जंगल के दावेदार, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 पृ.सं.49
4. कोमरम् भीम, साहु-अल्लम राजय्या, पेरपेक्टिवेस, हैदराबाद, 2013 पृ.सं.8
5. कोमरम् भीम, साहु-अल्लम राजय्या, पेरपेक्टिवेस, हैदराबाद, 2013 पृ.सं.33
6. कोमरम् भीम, साहु-अल्लम राजय्या, पेरपेक्टिवेस, हैदराबाद, 2013 पृ.सं.119
7. कोमरम् भीम, साहु-अल्लम राजय्या, पेरपेक्टिवेस, हैदराबाद, 2013 पृ.सं.89

...

संपर्क-सूत्र :- एम.फिल. (हिन्दी), हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद। मो:9494262733

“चित्रा मुद्गल का ‘आवां’ उपन्यास में नारीचेतना”

- यू.हरिकृष्ण आचार

लेखिका चित्रा मुद्गल स्त्री चेतना और स्त्री समानता को लेकर सदा ही सजग रही है। वे कहानियों, उपन्यासों और लेखों में नारी समानता और नारी मुक्ति के मुद्दों पर गहरी संपृक्ति के साथ लिखा है। चित्रा मुद्गल नारी मुक्ति की संघर्ष को उस व्यवस्था से जुड़े रहकर देखती है जो पुरुष को वर्चस्व प्रदान करता है। उनके अनुसार स्त्री हो या मजदूर उनका प्रश्न व्यवस्था से जुड़ा है। पुरुष पक्ष को जो सत्ता में वर्चस्व उपलब्ध है वह केवल व्यवस्था से जुड़ा है। उसी प्रकार स्त्री को भी अपना अधिकार उसी व्यवस्था से चाहिए। यहाँ पर व्यवस्था जरूरी है। स्त्री चेतना का अर्थ स्त्री को संघर्षशील बनाना और मन के भावों को खोलकर आवाज देने की शक्ति है।

चित्रा मुद्गल का ‘आवां’ उपन्यास सन् 2000 में प्रकाशित दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास को सहस्रब्दी का प्रथम पुरस्कार हिंदुशर्मा कथा सम्मान लंडन में प्राप्त हुआ था और विडला फाउंडेशन के व्यास सम्मान पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था।

नारी संघर्ष एवं जागरण जैसे सशक्त विषयों पर आधारित इस उपन्यास में नमिता, गौतमी, सुनंदा और शाहबेन जैसे पात्रों के माध्यम नारीवादी साहसी स्त्रियों का अंकन किया गया है। ‘आवां’ उपन्यास में एक ओर मजदूरों के विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला है तो दूसरी ओर स्त्री शोषण के प्रमुख मुद्दों को पाठकों के सामने रखा है।

‘आवां’ उपन्यास का प्रमुख पात्र नमिता पांडेय जो बचपन से यौन शोषण का शिकार बनती है। जब नमिता छोटी थी तब मौसा द्वारा उसका यौन शोषण होता है। नमिता जब यौव्वन अवस्था में पहुँची तो तब समाज के अत्यंत गौरवनीय व्यक्ति अन्ना साहब भी उससे यौन शोषण करते हैं। इस घटना से दुःखित नमिता कामगार अघाडी को छोड़ देती है। नई नौकरी के तलाश में वासवानी से सहायता माँगती है तो वासवानी उसका व्यवसायिक पार्टनर नामी औद्योगिक संजय कनोई से संबंध बनाकर ऐशो-आराम से जिंदगी जीने की सलाह देती है। नमिता से संजय प्रेम का नाटक रचकर केवल बच्चा पाने के उद्देश्य से उसका दैहिक शोषण करता है।

संजय का यह अनैतिक संतान को जन्म देने की इच्छा नमिता को नहीं था। मगर वह एक शिकार के रूप में फंस जाती है। जब अन्ना साहब की हत्या का खबर सुनकर नमिता का गर्भ नष्ट हो जाती है, यह खबर सुनते ही संजय में छिपे पूँजीवादी मानसिकता बाहर निकलता है तो नमिता से कहता है कि “मैं शादी तुम से करूँ या न करूँ...मुझे बाप बनाकर तुम जीवन भर ऐशो - आराम से रह सकती थी।” अब नमिता इस अनैतिक संबंध से छुटकारा पाने का निर्णय करके संजय से दूर चली जाती है। पूँजीपतियों के खिलाफ लड़ने के लिए तथा श्रमिकों का सहारा लेते हुए कामगार अघाडी को संभालने लगती है।

शाहबेहन 'आवां' उपन्यास में गांधी जी के विचारों से प्रभावित स्त्री पात्र है। वह अपनी पूरी जिंदगी श्रमिकों के लिए, स्त्री शोषण के विरुद्ध लड़ने के लिए गांधी तत्वों का पालन करते सार्थक बनाती है।

शाहबेहन जीवन श्रमजीवा संस्था के लिए समर्पित है। इसका उदाहरण कथानक में देखने को मिलता है जब बूढ़े माली रामचंद्र राव की मृत्यु हो जाती है तब आधे दिन का वेतन रामचंद्र राव के घरवालों को देने का आदेश सुनकर कुछ महिला कार्मिक विरोध जताते हैं; तब उन श्रमिकों से जो सवाल किया जाता है वह विचारणीय है। आजादी के लड़ाई में बापू के आह्वान पर हम सर्वस्व दान कर सत्याग्रह में भाग लिए, एक तुम हो जो असहाय मरे बूढ़े की सहायता करने के लिए हिचकिचा रही हो। क्या संवेदना सूख गई तुम्हारी? रही बात संस्था की तो श्रमजीवा संस्था सेवा के लिए है स्वार्थ के लिए नहीं। दरअसल 'आवां' उपन्यास के शाहबेहन तथा श्रमजीवा संस्था के जरिए समकालीन संदर्भ में गांधी विचारधारा को प्रासंगिकता के रूप में दर्शाया है।

'आवां' उपन्यास में सुनंदा एक संघर्षशील पात्र है। वह सोहेल नामक मुस्लिम लडके से प्यार करते हुए गर्भवती बन जाती है। सुनंदा से ब्याह करने के लिए उनके घर वाले सहमत होते हैं, लेकिन उसके बाप की एक शर्त थी कि सुनंदा को इस्लाम कबूल कर अपना नाम बदलना होगा। उसकी माँ किशोरीबाई और बस्तिवालों ने इस शर्त को स्वीकार करते हैं। मगर सुनंदा इसका विरोध करती है। मैं औरों के लिए अपने को बदलना नहीं चाहती, ऐसा कहकर शादी के लिए रखे शर्तों को ठुकराती है।

सुनंदा और सोहेल का मामला निजी न बनकर सांप्रदायिक जंग का कारण बन जाता है। तब सुनंदा उस जंग के खिलाफ लड़ने लगती है तो उसे मार दिया जाता है, इस तरह अंत तक लड़ते-लड़ते अपने जीवन को संघर्ष के लिए समर्पित कर देती है।

अतः 'आवां' उपन्यास के स्त्री पात्र के प्रति लेखिका चित्रा मुद्गल आत्म संयम, बुद्धि का ताकत और संघर्षशील व्यक्तित्व का चित्रण बहुत निजी रूप से चित्रित करने में सफल हुई है। इस उपन्यास में मुद्गल के तौर पर सांस्कृतिक नवोत्थान, श्रमिक आंदोलन, नारीवादी आंदोलनों का सजीव चित्रण किया है। और इस में सदियों से स्त्रियों पर चल रहे असंप्रदायिक रूढ़ीवाद, सड़ी गली के मान्यताओं को ठुकरा कर आधुनिकता को दर्शाने में सफल हुई है। इस बात को कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि स्त्री अबला नहीं सबला है।

...

संपर्क-सूत्र :- घर.नं.871 60th Cross, बॉसम स्कूल के पास, कुमारस्वामी लेआउट,
बेंगलूर-560078 मो.9611973301

दक्खिनी हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- डॉ. डी. विद्याधर

दक्खिनी वस्तुतः कोई विदेशी या हिंदीतर भाषा नहीं है। खड़ी बोली हिंदी और उसकी उपभाषाओं की शब्दावली अपना कर दक्खिन में विकसित होने के कारण इसे दक्खिनी नाम दिया गया है। भाषा विषयक गुणों को पर्यालोचित कर इसे हिंदी की दक्खिनी शैली या दक्खिनी हिंदी कहा जा सकता है।

दक्खिनी भाषा का इतिहास उतना ही प्राचीन और गौरवशाली है, जितना स्वयं दक्खिन, राष्ट्रभाषा हिंदी की गौरवशाली परंपरा को सदियों पूर्व के काल से जोड़ने का श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वह मात्र दक्खिनी को। दक्खिनी भाषा और कुछ नहीं सूफी संतों द्वारा प्रयुक्त वह भाषाई प्रयास है, जिसने उत्तर और दक्षिण के भेदभाव को दूर कर संपूर्ण भारत की जनता को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास उस काल में किया था, जब देश राष्ट्रीयता, राष्ट्रप्रेम जैसी भावनाओं से सर्वथा अपरिचित था। यही दक्खिनी भाषा सदियों बाद उन्नति के पथ पर अग्रसर होती हुई सँवर कर नया रूप अपनाकर जब साहित्य-पीठ पर अधिष्ठित हुई, तब विभिन्न रूचि के व्यक्तियों ने इसे हिंदी, हिन्दुस्तानी अथवा उर्दू नाम से संबोधित कर साहित्य साधना का साधन बनाया।

दक्खिनी हिंदी की पृष्ठभूमि का परिज्ञान प्राप्त करने से पूर्व आवश्यक है कि सर्वप्रथम इसके वास्तविक नाम का परिचय प्राप्त कर लें। फारसी लिपि में उपलब्ध दक्खिनी के विभिन्न ग्रंथों में इस भाषा अर्थात् दक्खिनी हिंदी के तीन नाम उपलब्ध होते हैं- 'हिंदी', हिन्दुई या हिन्दवी तथा दक्खिनी।

हिंदी, हिन्दुई तथा हिन्दवी एक ही अर्थ के परिचायक हैं, हिंदी अर्थात् हिन्दुओं की भाषा। हिन्दी की अपेक्षा हिन्दवी शब्द अधिक पुरातन है। आरंभ में इस हिन्दवी अथवा हिंदी शब्द का प्रयोग फारसी से इसका अंतर स्पष्ट रूप में पृथक दिखाने के लिए इस भारत अथवा हिन्द देश की भाषा के रूप में ही किया गया था। मुल्ला वजही ने अपनी गद्य कृति 'सबरस' में अपने कथानक का श्रीगणेश करते हुए लिखा है-

“हिन्दोस्तान में हिंदी ड़बान सो इस लतफत इस छन्दा सो नड्म और नस्न मिलाकर-जुलाकर यों नैं बोल्या।”

इस कथन में जवान, लताफत, नड्म, नस्न मात्र चार ही विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। हिंदी करण के पश्चात् यह कथन इस प्रकार पड़ा जा सकता है-

“हिन्दुस्तान में, हिंदी भाषा में इस छन्द में गद्य और पद्य मिलाकर किसी ने इससे पूर्व नहीं कहा है।”

शेख अशरफ ने अपनी कृति 'नौसर हार' में इस देश की भाषा को हिन्दवी कहकर संबोधित किया है-

“बाजा कैता हिन्दवी में। किस्सए मकतल शाह हुसैं।
नज्म लिखी सब मौजू आन। यों मैं हिन्दवी कर आसान।”²

शेख अशरफ के इस कथन से यह भी ध्वनित होता है कि उस समय हिन्दवी भाषा भी दो प्रकार की थी- एक सुपठित जन समुदाय की क्लिष्ट भाषा तथा दूसरी जन सामान्य की भाषा। अपने प्रचार के लिए जन सामान्य की भाषा का प्रयोग ही उचित मानकर उन्होंने इस देश की भाषा को सहज और सरल बनाकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का प्रयास केवल इसी दृष्टि से किया, जिससे बहुसंख्यक व्यक्ति इस प्रचार से लाभान्वित हो सकें।

शाह बुरहानुद्दीन जानम, बीजापुरी ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'इर्शादनामा' में इस देश की भाषा के लिए संभवतः सबसे पहले स्पष्टतः हिन्दी शब्द का प्रयोग किया है-

“यह सब बोलूं हिन्दी बोल। पुन तूँ एन्हीं सेती घोल।
ऐब न राखे हिन्दी बोल। मानी तो रख दीखें खोल।
हिन्दी बोल ने किया बखान। जेकर परसाद भी मुंझ ग्यान।।”³

इन्हीं परम्परा के अनुयायी जुनूनी ने मोजजह का अनुवाद प्रस्तुत करते समय इस देश की भाषा को स्पष्ट शब्दों में हिन्दी कहा है-

“मैं इसकों दर हिन्दी जबां, इस वास्ते कहने लगा।
जो फारसी समझे नहीं, समझे इसे खुशदिल होकर।”⁴

बुलबुल ने भी इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए अपनी मसनवी चंद्र बदन व महयार में इस देश की भाषा के लिए 'हिंदी' शब्द का प्रयोग किया है।

“हुआ बुलबुल इससे जरूरत।
दिखाना फर्स की हिन्दी में सूरत।”⁵

उपर्युक्त रचनाकारों के कथन से यह स्पष्टतः ध्वनित हो रहा है कि “हिन्दी शब्द का प्रयोग भारत की” के अर्थ में हुआ है। इसी हिन्दी, हिन्दवी को कुछ लेखकों ने 'दक्खिनी' नाम से भी संबोधित किया है। वजही ने अपनी मसनवी 'कुतुब मुशतरी' में इसे दक्खिनी के नाम से संबोधित किया है-

“दखिन में जो दिखिनी मिठी बात का।
अदा नैं किया कोई इस धात का।।”⁶

ध्यातव्य है कि वजही ने अपने सबरस में इसी भाषा को हिन्दी कहा है और कुतुब मुशतरी में दक्खिनी। यह इस बात का प्रमाण है कि ये रचनाकार एक ही भाषा को हिन्दी और दक्खिनी दोनों ही नामों से स्मरण करते थे और उल्लेख करते थे।

इब्न निशाती ने अपने 'फूलवन' में इसे दक्खिनी कहा है।

“इसे हरकस के तई समझाको तूँ बोल ।
दक्खिनी के बाताँ सार्या कू खोल ॥”

रूस्तम ने भी अपने ‘खाबिर नामा’ में इसे दक्खिनी के नाम से स्मरण करते हुए लिखा है-

“किया तर्जुमा दक्खिनी हौर दिल पजीर ।
बोल्यी मो अजह यूँ कमाल खँ दबीर ॥”⁸

इस प्रकार एक ही भाषा के तीन नाम मिलते हैं- हिन्दवी, हिन्दी तथा दक्खिनी ।

इस प्रकार नामकरण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह जानने की कि देश अथवा देशवासियों के नाम पर हिन्दी अथवा हिन्दवी कहलाने वाली इस देश की भाषा का नाम दक्खिनी क्यों पड़ा ?

इस भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर विदित होता है कि इस भाषा को (जिसे दक्खिनी कहा गया है) किसी भी दाक्षिणात्य आर्य अथवा द्रवि ? भाषा से कोई संबंध नहीं है । पारिवारिक दृष्टि से इस का संबंध उत्तर भारत की आर्य भाषाओं से है । इसे दक्खिनी कहने के पीछे कुछ सशक्त ऐतिहासिक कारण हैं । दिल्ली के सुल्तान अल्लाउद्दीन खिजली की सेना ने 1297 में गुजरात पर विजय प्राप्त की । उसी के सेनापति मालिक काफूर ने 1304 ई. में महाराष्ट्र, 1307 ई. में आंध्र प्रदेश और 1308 ई. में कर्नाटक पर विजय प्राप्त की । ये सभी प्रांत दिल्ली के सूबे माने जाने लगे । मुस्लिम बादशाहों ने दक्खिनी को इतना महत्व दिया कि प्रायः सभी बादशाह दक्खिन को अपने राज्य का अंग बनाने की दिशा में विशेषतः सचेष्ट रहे । 1327 ई. में मुहम्मद तुगलक ने देवगिरि अर्थात् दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया । फिरोज तुगलक के शासनकाल में दक्खिन स्वतंत्र हो गया । गुजरात भी तुगलक शासन के कर-पाश से विमुक्त हो गया । 1333 ई. में विजयनगर में हिन्दु राज्य स्थापित हुआ । 1388 ई. में फिरोजशाह तुगलक के मरते ही दक्षिण पूर्णतया स्वतंत्र हो गया । 1347 में हसन गंगो बहमनी ने गुलबर्गा में बहमनी राज्य स्थापित किया । परंतु यह अल्पायु सिद्ध हुआ । इस राज्य के छिन्न-भिन्न होते ही बीजापुर में आदिल शाही (1490 ई.) गोलकोंडा में कुतुबशाही (1512 ई.) बीदर में वरीद शाही (1497 ई.) बरार में इमाम शाही (1490 ई.) तथा अहमदनगर में निडाम शाही (1590 ई.) आदि राज्य स्थापित हुए । परंतु ये सदैव परस्पर लड़ते झगड़ते रहे । ये राज्य दक्खिनी हिन्दी के कवियों और लेखकों को सतत आश्रय देते रहे । इसी संरक्षण के परिणाम स्वरूप 15वीं, 16वीं और 17वीं शताब्दियों में दक्खिनी हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य रचा गया । 17वीं शताब्दी के मध्य में जब औरंगजेब ने दक्षिण के विभिन्न राज्यों को समाप्त किया तब कुछ समय के लिए इस साहित्य सर्जन के कार्य में गत्यावरोध उत्पन्न हुआ, परंतु जब 1650 ई. में औरंगजेब ने औरंगाबाद को अपना केन्द्र बनाया, तब फिर दक्खिनी हिन्दी के कवि वहाँ पहुँचे और औरंगजेब ने नुसरती आदि दो-चार कवियों को न केवल सम्मानित किया अपितु उन्हें पूर्ण संरक्षण भी प्रदान किया । जिसके फलस्वरूप कुछ उत्कृष्ट साहित्य रचा गया । 1723 ई. में निजाम राज्य के संस्थापक निजामुल्मुल्क आरूफ जाह दक्षिण के स्थाई सूबेदार बन कर दक्षिण पहुँचे और कालान्तर में अवसर पाकर उन्होंने अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना हैदराबाद में की और परम्परानुसार

दक्खिनी हिंदी के साहित्यकारों को आश्रय दिया। इस प्रकार राज्याश्रय पाकर दक्खिनी हिंदी यहाँ खूब फली-फूली।

हमारे इस कथन का यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि जिस समय दक्खिनी हिंदी में साहित्य रचना हो रही थी उस समय दक्षिण की समृद्ध भाषाओं मराठी, तेलुगु, कन्नड, तमिल, मलयालम आदि में यह रचना प्रक्रिया अवरूद्ध थी। इसके विपरीत हमारा मंतव्य यह बताना है कि जिस प्रदेश में आज हिंदी का विरोध हो रहा है उसी प्रदेश में हिंदी, हिन्दवी अथवा दक्खिनी का साहित्य वहाँ की विविध भाषाओं में पहले से ही विद्यमान था। इस स्तरीय साहित्य की विद्यमानता में एक नई भाषा के साहित्य का सर्वाधिक और लोक प्रिय होना चमत्कार की ही बात कही जा सकती है। मराठी में 1263 ई. से 1271 ई. मध्य आचार्य सूत्र, सिद्धांत सूत्र पाठ, लीला चरित आदि ग्रंथ महींद्र भट्ट द्वारा रचे गए। तमिल में 5वीं शताब्दी में मणि मेखलाई तथा कुंडल के श्री जैसे महाकाव्य रचे गए। कन्नड में 815-877 ई. में नृप तुङ्ग द्वारा कविराज मार्ग नामक अलंकार ग्रंथ रचा गया। तेलुगु में 1026-63 ई. के मध्य नन्नय भट्ट द्वारा महाभारत एवं तेलुगु व्याकरण की रचना की गई। मलयालम की प्रथम कृति 13वीं शती का रामचरित माना जाता है जिसके प्रणेता त्रावणकोर नरेश श्री राम हैं। इस प्रकार दक्षिण के साहित्य प्रणयन की परंपरा 5वीं शती तक की उपलब्ध होती है। इसके विपरीत देवगिरि में मुस्लिम राज्य की स्थापना 1327 ई. में हुई और इसके लगभग 100 वर्ष बाद ख्वाजा बंदे नवाज गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी का 'मेराजुल अशकीन' दक्खिनी हिंदी की प्रथम गद्य कृति सामने आई।

दक्खिनी में यह हिन्दवी अथवा दक्खिनी साहित्य बहमनी, आदिलशाही, कुतुबशाही, बरीद शाही, इमाद शाही, निजाम शाही आदि राजवंशों के सुल्तानों और उनके पार्षदों के मस्तिष्क की उपज थी। इस भाषा के प्रचार साहित्य निर्माण आदि में स्थानीय जनता का किसी प्रकार का सहयोग रहा हो, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। अपनी भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य की विद्यमानता में भी इस प्रदेश की जनता ने इस भाषा और उसके साहित्य का विरोध नहीं किया, अपितु उसे फलने-फूलने दिया। इसका एक मात्र कारण यही जान पड़ता है कि किस्से-कहानियों की रोचकता और भाषा की सरलता ने उन्हें इस भाषा को अंगीकृत करने के लिए प्रेरित किया होगा।

दक्खिनी के प्रथम ग्रंथकार ख्वाजा बंदे नवाज गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी (1318-1422 ई.) माने जाते हैं। इनका शैशव और वार्धक्य दक्षिण में बीता था। सुल्तान फिरोजशाह बहमनी के निमंत्रण पर ये गुलबर्गा पहुँचे थे और वहीं रहते हुए दिवंगत हुए। इनके तीन रिसाले दक्खिनी में उपलब्ध होते हैं- मेरा जुल आशकीन, रिसाला सेहवारा और हिदायत नामा। ख्वाजा साहब के पौत्र अब्दुल हुसैनी की भी एक कृति दक्खिनी में है- 'निशातुल इश्क' जो किसी फारसी कृति का अनुवाद है। बहमनी राज्य के श्रेष्ठ कवि थे, निड़ामी जिनकी रचना कदमराव व पदमराव मसनवी है।

दक्खिनी साहित्य आदिल शाही (बीजापुर) कुतुबशाही राज्यों में खूब फली फूली।

कुतुबशाही राज्य में वजीह, गवासी, इब्ने निशाती, गुलाम अली, सेवक आदि अच्छे साहित्यकार हुए। आदिल शाही राज्य में शाह मीराँजी, बुरहानुद्दीन जानम मुकीमी, सनाती, रूस्तमी, नसरती आदि हुए। बरीद शाही में भी कुछ साहित्य रचा गया। औरंगजेब की दक्षिण विजय के पश्चात् उसके आश्रय में भी कुछ साहित्यकार हुए, जिनमें प्रमुख हैं वली औरंगाबादी, जईफी, बहरी, वजदी वली बेलूरी, इशरती आदि।

वली औरंगाबादी का यह पद प्रसिद्ध है, जिसे आज की मानक हिंदी के समकक्ष रखा जा सकता है-

“बैरागी जो कहते हैं उसे घरबार करना क्या।

हुई जोगन जो की उसे संसार करना क्या।।

जो पीवेपिर्त (प्रीत) का पानी उसे क्या काम पानी सों।

जो भोजन दुःख का करते हैं उसे आधार करना क्या।”⁹

1723 ई. में हैदराबाद में निजाम आसफ जाह का राज्य स्थापित हुआ। इनके आश्रय में लाला मोहन लाल ‘मेहताब’ लाला लक्ष्मी नारायण ‘शफीक’ जैसे दक्खिनी के साहित्यकार हुए। आगे चलकर ‘हलम’ ने इसी दक्खिनी हिंदी में ठुमरियाँ तथा अजमत ने हिंदी छंद प्रस्तुत किए। मुहिब ने स्त्री सुधार पर अपनी लेखनी को गति दी। आधुनिक समय में गुलबर्गा के सुलेमान खतीब ने भारतीय उपमानों को लेकर अपनी दक्खिनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उनकी एक कविता है-

“मिट्टा मिट्टा मोठ का पानी।

सीता सर की पाक जवानी।”

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिंदी ने दक्षिण में फूल-फल कर भावी राष्ट्रभाषा का मार्ग ही प्रशस्त नहीं किया अपितु उसे वह दिशा दर्शन भी दिया।

संदर्भ सूची :

1. सबरस (1635 ई.) पृष्ठ-11, मुल्ला वजही
2. नौसर हार (1503 ई.) शेख अशरफ
3. इर्शादनामा (1582 ई.) शाह बुरहानुद्दीन जानम
4. मख्तूतात (1690 ई.) पृष्ठ-22, जुनूनी
5. मसनवी चंदर बदन व महयार-बुलबुल
6. कुतुब मुशतरी, पृष्ठ-16, वजही
7. फूलवन (1649 ई.)- इब्न निशाती
8. कुल्लियात, पृष्ठ- 55, वली औरंगाबादी
9. सुलेमान खतीब

...

संपर्क-सूत्र : असोसियेट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विवेक वर्धिनी महाविद्यालय
जामबाग, हैदराबाद, तेलंगाना, भारत मो.9963333957

पद-साहित्य और तेलुगु के भक्त कवि

- प्रो.पी.माणिक्याम्बा 'मणि'

प्रत्येक साहित्य में साहित्य की रचना दो प्रकार की होती है। पठनीय और गेय। कुछ रचनाएँ ऐसी होती हैं साहित्य के सभी तत्वों से समन्वित हो कर भी गेय होती हैं। वाल्मीकि रामायण को इसलिए 'पाठ्यं च गेयं च' माना जाता है। कविता केवल पठनीय होती है। पद-कविता गाते हुए या सुनते हुए मन आह्वानित होता है। तेलुगु के वाक्गेयकारों द्वारा रचित साहित्य पद कविता कहा जाता है जिसमें साहित्य के लक्षणों के साथ गेय तत्व की प्रधानता है। त्यागराज, नाद ब्रह्म हैं-उनकी रचनाओं को 'कृति' ; अन्नमाचार्य 'मधुरस ब्रह्म' है और उनकी रचनाएँ 'पद', 'भावब्रह्म' रामदास की रचनाओं को 'कीर्तन' कहा जाता है।

पद साहित्य में ताल्लपाक अन्नमाचार्य का विशिष्ट स्थान है। अन्नमाचार्य के वंशजों ने पद-साहित्य परंपरा में अपना अपूर्व योगदान दिया। किंतु उनमें आदि कवि अन्नमाचार्य ही है। संस्कृत एवं आंध्र भाषा(तेलुगु) के पाण्डित्य के साथ साहित्य एवं संगीत पर इनका अनन्य अधिकार था। अन्नमाचार्य वेंकटेश्वर (तिरुमल) के अनन्य भक्त थे। भक्ति में तन्मय होकर पद रचना करते हुए स्वयं गाते थे। इसलिए 'पद कविता पितामह', 'हरि संकीर्तनाचार्य' एवं 'पंचमागम सार्वभौम' आदि विरुदों से प्रसिद्ध थे। वैष्णव भक्ति-साधना में तन्मय होकर उन्होंने अपनी अनुभूति की सरस अभिव्यक्ति की। 'द्रविड वेद' को तेलुगु में लाकर तेलुगु भाषा को माधुर्य से भर दिया। 'रामायण' को द्विपद शैली में आलाप करने का श्रेय अन्नमाचार्य को है। उनकी कीर्ति पताका है-श्रृंगार एवं आध्यात्म से प्रतिभासित पद-साहित्य। उनके द्वारा 32 हजार से ज्यादा पदों की रचना हुई। वैष्णव संप्रदाय का विश्वास है कि मोक्ष-साधना के लिए भक्ति एवं प्रपत्ति का मार्ग ही राजमार्ग है। भक्ति के अनेक प्रकार हैं-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भाव भक्ति के साथ पंच-विधा भक्ति रूप है। अन्नमाचार्य ने अपने आराध्य देव को इन पाँचों भक्ति रूपों के साथ आराधना की। एक-एक भक्ति-पद्धति से अनेक हजार पदों की रचना की। आराध्य देव को प्राणप्रिय के रूप में भावन करने का जो 'महाभाव' है, उसे मधुर भक्ति कहा जाता है। यही आधुनिक भारतीय साहित्य में वैष्णव भक्ति-कविता के नाम से जाना जाता है। अन्नमाचार्य के पद-साहित्य में आधे से ज्यादा श्रृंगार-पद हैं। उनमें स्वयं नायिका के रूप में अनेक पदों में भावन किया गया है। दूती बन कर प्रेयसी-प्रिय (अलमेल मंगा-श्री वेंकटेश्वर) के बीच मान, मनुहार आदि संदर्भों का भी मधुर चित्रण है।

पंचविधा भक्ति के प्रस्थान में श्री कृष्ण केंद्र बिंदु है। वैष्णव भक्ति मार्ग में श्रीकृष्ण भक्ति ही परिपूर्ण भक्ति है। माधुर्य भावना का आधार भी श्रीकृष्ण परब्रह्म ही है। अन्नमाचार्य के लिए श्री वेंकटेश्वर ही सगुण ब्रह्म है। श्रीकृष्ण को अनेक रूपों में उन्होंने दर्शन किया और अपने पदों में रूपायित कर सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत किया। श्रीकृष्ण के भक्ति तत्व को अपने पद-साहित्य में प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित कर तेलुगु साहित्य में संप्रदाय-मार्ग की कविता की प्राण-प्रतिष्ठा की।

अन्नमाचार्य ने अध्यात्म एवं श्रृंगार पदों के साथ श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वात्सल्य भक्ति का भी चित्रण किया। अन्नमाचार्य के लिए श्री वेंकटेश्वर ही अंतरात्मा एवं परमात्मा है। परब्रह्म के शुद्ध निर्गुण रूप की तात्विक अभिव्यक्ति भी अन्नमाचार्य की विशेषता है। वेदांत की इस निगूढ़ निर्गुण तत्व को देशि-छंदों और पदों में देसी भाषा की भंगिमा के साथ अभिव्यक्त कर साधारण जनसमुदाय तक पहुँचाने का सफल प्रयत्न किया।

भक्ति को रस दशा तक पहुँचाने वाले कवियों में अन्नमाचार्य प्रमुख है। मुग्ध भक्ति के रूप में 'बसव पुराण' के रचनाकार पालंकुरिक सोमनाथ ने भक्ति की प्रतिष्ठा की। 'मधुर भक्ति' भक्ति रस के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीमद् भागवत् के रचनाकार पोतना एवं 'पदकविता पितामह' अन्नमाचार्य को है। दोनों ही 15 वीं शताब्दी के कवि हैं।

“भक्ति-श्रृंगार के समान शुद्ध लौकिक नहीं है, शांत के समान शुद्ध आध्यात्मिक भी नहीं है। दोनों की मिश्र प्रवृत्ति है। अन्नमाचार्य के श्रृंगार कीर्तनों के द्वारा या पोतना के 'भागवत' के पद्यों के द्वारा प्राप्त अनुभूति जितनी अलौकिक है उतनी ही आध्यात्मिक है। यह मिश्र प्रवृत्ति ही माधुर्य एवं 'मधुर भक्ति' है।” किंतु इस 'माधुर्य भक्ति' के रसास्वादन के लिए शर्त यह है कि भक्त का आराध्य के चरण कमलों की अनन्य अनुरक्ति है। “भक्ति रसामृत सिंधु” का यह कथन द्रष्टव्य है-

सर्वदैव दुरुहोऽय मभक्तैर्भगवद्रसः।

तत्पदाम्बुज सर्वस्वैर्भक्तै रेवानुरस्यते।।

“वे शुद्ध भक्त ही इस रस की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं जिन्होंने श्री कृष्ण के चरण-कमलों को ही अपना सर्वस्व माना है। भक्ति गंध शून्य, जडोदित भावों से जिनका हृदय परिपूर्ण है और जिनके सहज तर्कप्रिय संस्कार हैं वे इस रस का अनुभव नहीं कर सकते। मनुष्य के हृदय से शुद्धसत्व स्थिति में उत्पन्न किसी चमत्कारपूर्ण भाव का उदय 'रस' कहलाता है। वह भाव परम शुद्ध है। परम चमत्कारपूर्ण होता है। जड जगत् में रस की स्थिति नहीं है। वह चित् जगत की वस्तु है। चिदंश जीव की सत्ता में प्रकाशित होता है। भक्ति की समाधि अवस्था में यह रस लक्षित होता है। अन्नमाचार्य का पद-साहित्य इस प्रकार की भक्ति-समाधि से निसृत रस-स्रोत है। सहृदय मर्मज्ञ अपनी योग्यता एवं पात्रता के अनुरूप वेंकटेश्वर (जो श्रीकृष्ण है, बाल कृष्ण है, साक्षात् विष्णु है) के भक्ति-सागर में निरंतर भाव-मग्न हो, रसानुभूति प्राप्त करता है। इनके पद साहित्य को सूरदास के पद-साहित्य के समतुल्य देखा जा सकता है। किंतु यह ध्यान देने की बात है कि अन्नमाचार्य सूरदास से पहले ही पद-साहित्य की रचना करते रहे थे। सूरदास के दीक्षा गुरु श्री वल्लभाचार्य स्वयं अन्नमाचार्य के पदों से विशेषकर श्रृंगार एवं वात्सल्य संबंधी पदों से परिचित एवं प्रभावित थे। इस प्रकार अन्नमाचार्य भारतीय भक्ति साहित्य में लोकभाषा में पद-रचना में अग्रणी तो थे ही साथ ही उन्होंने संस्कृत में भी अनेक सरस पदों की मधुर शब्द योजना के कारण 'देशि संप्रदाय एवं लक्षण ग्रंथ के रचनाकार के रूप में 'मार्ग कविता' के अप्रतिम रचनाकार थे।' संगीत का ज्ञान एवं लोकगीतों की परंपरा के ज्ञान के कारण अन्नमाचार्य मधुर गायक के रूप में भी प्रसिद्ध थे।

त्यागराज-पद-साहित्य 'कृति'

पद्य कविता की सुंदर रचना एवं पद्य कविता की रमणीय रचना-दोनों दो प्रकार की कला है। एक का संबंध साहित्य परंपरा एवं संप्रदाय से है, दूसरे की विशेषता है कि उसमें साहित्य एवं संगीत का अद्भुत योग रहता है। पद्य साहित्य का तेलुगु साहित्य में तीन रूप हैं-पद्य, कृति एवं कीर्तना। ये तीनों विशिष्ट प्रक्रियाओं के रूप में मानी जाती हैं। पद्य में साहित्य एवं वस्तु की गेय अभिव्यक्ति होती है। संगीत की राग रागिनियों, या लोकगीतों के तर्ज पर इनको गाया जाता है। अन्नमाचार्य के पद्य इस प्रकार के हैं। किंतु 'कृति' का संबंध प्रधान रूप से संगीत संप्रदाय से होता है। त्यागराज की विशेषता है कि उन्होंने संगीत-संप्रदाय का निर्वाह करते हुए ही उसको साहित्यिक गरिमा भी प्रदान की। उनकी कृतियों के द्वारा संगीत विद्वान गायन का माधुर्य आस्वादान करते हुए आस्वादनीय बनाते हैं। साहित्य के मर्मज्ञ भावनाओं के सुगंध में तन्मय होते हुए साहित्य सौंदर्य का विवेचन करते हैं। अतः त्यागराज की कृतियों का विश्लेषण करने के लिए संगीत एवं साहित्य का शास्त्रीय ज्ञान अपेक्षित होता है। यहाँ हम त्यागराज की भक्ति भावना का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

त्यागराज स्वामी के व्यक्तित्व के तीन प्रमुख गुण हैं-1) नादब्रह्म की उपासना शक्ति, 2) भक्ति एवं ज्ञान का परिपाक, 3) कविता की लालित्य-योजना। संगीत के विद्वान त्यागराज की कृतियों के राग-प्रसार एवं वैभव को अपने गायन में जीवन-गान के रूप में अनुरंजित करते हैं। उनका विचार है कि कृति में भाव से ज्यादा राग-प्रसार ही प्रमुख है और उससे उत्पन्न गान-रस के आस्वादन की तन्मयता के साथ कृति का आलाप प्रारंभ करते हैं। उनका संगीत के प्रति अनुरक्ति अधिक है और साहित्य के प्रति भक्ति गौण होता है। किंतु साहित्य की उपासना करनेवाले साहित्य एवं संगीत का समन्वय एवं समतौल्य के आधार पर 'भक्ति-रस-सिद्ध' गायक के रूप में साधना करते हैं। स्वर भाव की अभिव्यक्ति समग्र रूप से प्रस्फुट नहीं कर सकता है। इसलिए वह शब्दाश्रित होता है। शब्द के कारण उसकी आस्वादनियता अधिक हो जाती है। शब्द अर्थ संपन्न होने के कारण अर्थ-दीप्ति देता है। कृतियों को साहित्य गौरव प्रदान करने वाली शक्ति ही अर्थ दीप्ति है। श्री रामचंद्र के प्रति अनन्य भक्ति भावना के साथ त्यागराज ने संगीत और साहित्य के सुंदर संयोजन से अपनी कृतियों में भक्ति रस के साथ सौंदर्य का आविष्कार किया। भारतीय संगीत संसार में 'कर्नाटक संगीत' के नाम से प्रसिद्ध इस संगीत की विशेषता ही 'कर्नाटक संगीत' कहा जाता है। पदों की रचना तेलुगु में और प्रसिद्ध गायक तमिल भाषी थे। आधुनिक काल में श्री बाल मुरलीकृष्ण, चूकल चिन सत्यनारायण आदि कर्नाटक संगीत के गायकों के रूप में यशस्वी हैं जो तेलुगु भाषी हैं।

त्यागराज का आराध्य देव-श्रीरामचंद्र है। श्रीरामचंद्र के प्रति अनन्य भक्ति भावना उनकी प्रत्येक कृति में परिलक्षित होती है। श्रीरामचंद्र के रूप सौंदर्य का चित्रण एवं शील सौंदर्य का निरूपण सरस मधुर शैली में किया गया। त्यागराज को हम तुलसीदास के करीब पाते हैं। भक्ति भावना के साथ, संगीत का शास्त्रीय ज्ञान साहित्य मर्मज्ञता त्यागराज की कृतियों को विशिष्टता प्रदान करते हैं। 'पद्य कविता' को तीन प्रकार का माना जा सकता है-

1) शुद्ध संगीत प्रक्रिया (Pure Music) त्यागराज की कृतियों की इसमें गणना हो सकती है। किंतु विशिष्टता यह है कि उनकी 'कृतियों' में संगीत की जितनी प्रधानता है साहित्य की भी उतनी ही प्रधानता देखी जा सकती है।

2) अनुवर्तित संगीत प्रक्रिया (Applied Music) - उसमें पद का एक विशेष प्रकार 'कीर्तन' की गणना होती है और रामदास के कीर्तन प्रमुख माने जाते हैं।

3) अभिनयोचित संगीत प्रक्रिया (Dance Music) - अभिनय के लिए उपयुक्त साहित्य एवं संगीत के समन्वय का ध्यान रखा जाता है।

शुद्ध संगीत प्रक्रिया के द्वारा श्रोता गान-रस को आस्वादन करता है, अनुवर्तित, अभिनयोचित संगीत प्रक्रियाओं के द्वारा श्रोता साहित्य-रस में अवगाहन करता है।”

संगीत में प्रधान रूप से दो लक्षण महत्वपूर्ण रहते हैं।

1) गायन की अभिव्यक्ति गरिमा। इस लक्षण समन्वित होने पर संगीत 'शुद्ध संगीत' (Pure Music) माना जाता है।

2) साहित्य की अभिव्यक्ति-कुशलता। त्यागराज से पूर्व के संगीतकारों ने साहित्य को प्रधानता दी।

त्यागराज से पूर्व की पद रचनाओं साहित्य एवं भाव-योजना संगीत एक साधन के रूप प्रयोग में लाया गया। त्यागराज ने गान-रस की अभिव्यक्ति की अधिक समीप 'कृति' की रचना प्रक्रिया का निर्वाह किया। 'कृति' में रस योजना महत्वपूर्ण है। 'कृति' की रचना प्रक्रिया में साहित्य और संगीत में अंग-अंगी संबंध रहता है। महान 'वाग्गेयकार' त्यागराज की कृतियों से साहित्य एवं संगीत का रसास्वादन कर श्रोता मुग्ध हो जाता है।

रामदास का कीर्तन-साहित्य

रामदास का जीवन काल 1620-1680 माना जाता है। कंचल गोपन्ना ही भक्त रामदास के रूप में प्रसिद्ध है। 'राम' नाम भवसागर से तारनेवाला है। कहा जाता है-यह राम मंत्र कवीर से गोपन्न को मिला तब से वह अपने आपको 'रामदास' के रूप में मानने लगा। हृदय में राम के भक्त वत्सल रूप को अपना आराध्य माना। रामदास 'भद्राचलम' (श्रीराम का भव्य मंदिर जिस स्थान पर है उस गाँव का नाम) के तहसीलदार थे। गोलकोण्डा नवाब के सरकारी खजाने से पैसा खर्च कर रामदास ने राम का भव्य मंदिर बनवाया। क्रोधित नवाब ने रामदास को बंदीखाने में बंद कर दिया। बंदीखाने में अनेक कष्ट सहन करना पड़ा। रामदास की दैन्य भावना के कीर्तन बहुत मिलते हैं। दास्य-भक्ति की चरम भावना अपने स्वामी को चुनौती देना। भक्त को उद्धार करें तो स्वामी की महिमा को मानना। इस भाव के अनेक सुंदर कीर्तन रामदास ने तन्मय होकर गाया था। रामदास ने भद्राचल क्षेत्र की महिमा के कीर्तन गाये थे। रामदास की भक्ति की पराकाष्ठा के रूप में कहा जाता है कि गोलकोण्डा नवाब के तानीशा के पास युवकों के रूप में श्रीराम और लक्ष्मण स्वयं आकर रामदास ने मंदिर के लिए जो खर्च किया उस धन को लौटाया। समकालीन संगीतकारों में मूर्धन्य श्री मंगलंपल्लि बालमुरली कृष्ण ने रामदास के कीर्तनों को नयी-नयी राग-रागनियों में गायन कर उनको अपूर्व सौंदर्य प्रदान किया। रामदास ने सीता-राम के अनन्य सौंदर्य, भक्त वत्सलता आदि का भक्त के रूप में तन्मय होकर गायन किया तो 'कीर्तन' की रचना हुई। कोई योजना बद्ध रचना न होकर ये कीर्तन भक्ति सहज सरल वाग्धारा की रसधारा के रूप में तेलुगु साहित्य की अमूल्य निधि है। पण्डित ही नहीं साधारण जन भी गाने योग्य इनकी रचना हुई।

भक्त कवि रामदास के कीर्तन मंदिरों में भजन-मंडलियों के द्वारा भी गाये जाते हैं और संगीत विद्वानों के द्वारा संगीत महासभाओं में भी प्रस्तुत किये जाते हैं।

क्षेत्रय्या का पद साहित्य

अन्नमाचार्य के बाद पद-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध क्षेत्रय्या के पदों में संगीत-साहित्य ही नहीं अभिनय के लिए अनुकूल रचना प्रक्रिया का दर्शन होता है। इनका जन्म 1590 के करीब माना जाता है। इनको दक्षिण के मधुर और तंजावूर प्रांत के नायक राजाओं का राजाश्रय ही नहीं, गोलकोण्डा बादशाह का सम्मान भी मिला। किंतु उनका आराध्य 'मुच्चा गोपाल' मुकुट से हजारों पदों की रचना की जो श्रृंगार प्रधान थे। तीन-चार सौ पद ही आज प्राप्त होते हैं जिनको कूचिपूडि नृत्य संप्रदास में बड़ी संख्या में प्रदर्शन किये जाते हैं। क्षेत्रय्या का पद-तालित्य सहृदय को रसानुभूति में तन्मय करता है। श्रृंगार प्रधान होने के कारण प्रत्येक पद में संयोग एवं वियोग श्रृंगार की भाव-भंगिमाओं का विंबात्मक वर्णन मिलता है। विरह की उत्कण्ठा, मान, दूती के साथ संदेश आदि का भावपूर्ण वर्णन मिलता है। श्रृंगार के संयोग पक्ष का भी खूब वर्णन मिलता है। जयदेव, विद्यापति एवं सूरदास के श्रृंगार-पदों के साथ क्षेत्रय्या के पदों की तुलना की जा सकती है। आश्चर्य की बात है पूरे भारत में 15, 16, 17 वीं शताब्दी में श्रीकृष्ण की लीला का श्रृंगार पक्ष का काव्यात्मक वर्णन मिलता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि पद-साहित्य में ही श्रीकृष्ण के इस 'रस-रूप' की अभिव्यक्ति तन्मयता के साथ परिलक्षित होती है।

पद-साहित्य के अन्य रचनाकार

अन्नमाचार्य ने श्री वेंकटेश्वर की अनन्य भक्ति भावना में आध्यात्म एवं श्रृंगार पदों की रचना की। अन्नमाचार्य ने अपने आराध्य के सेवा कार्यों में तन्मय होकर वेंकटेश्वर की प्रशस्ति, तिरुपति क्षेत्र की प्रशस्ति के साथ, मृदु-मधुर शैली में आराध्य के वैभव का भी वर्णन किया। तिरुमल-तिरुपति के वेंकटेश्वर को साक्षात् विष्णु मान कर पूजा-अर्चना की। विशेष बात यह है कि यह संकीर्तन की परंपरा उनके बाद तीन पीढ़ियों तक निरंतर चली। अन्नमाचार्य की पत्नी ताल्लपाक तिम्वक्का की काव्य प्रतिभा उनके 'सुभद्रा कल्याणम' द्विपद काव्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। अन्नमाचार्य के पुत्र ताल्लपाक पेद तिरुमलाचार्य ने साहित्य की सभी विधाओं में रचना की। उन्होंने 'संकीर्तन भण्डागार' की स्थापना की और अपने पिता अन्नमाचार्य के पदों को ताम्र पत्रों पर लिखवाकर सुरक्षित रखने के काम भी किया। पेद तिरुमलाचार्य ने स्वयं भी अपने पिता की शैली में पदों की रचना की। श्री वेंकटेश्वर के वैभव के अनुरूप नित्य उत्सव, पक्ष उत्सव, मास उत्सव, वसंतोत्सव, ब्रह्मोत्सव, नौका विहार, डोलोत्सव आदि पर्वों के लिए अन्नमाचार्य के समान पेद तिरुमलाचार्य और चिन तिरुमलाचार्य ने पदों की रचना की।

...

संपर्क-सूत्र :- घर.नं.608, अपनाई सर्ईवर कम्प्यून्, नल्लगण्डला, रंगारेड्डी जिला,
हैदराबाद-500 019. मो:9866139120

तेलुगु में व्यंग्य साहित्य का उद्भव और विकास

- प्रो.आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी

साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रणालियों में व्यंग्य प्रणाली एक विशिष्ट प्रणाली है। इस प्रणाली में जनाकर्षण शक्ति अधिक होती है। सरल एवं चित्ताकर्षक संप्रेषणीयता इस की आत्मा है। गंभीर बात को अगंभीर ढंग से, कड़वे वचनों को मिठास युक्त रस भरे शब्दों में व्यक्त करना इस प्रणाली का लक्ष्य है। अभिव्यक्ति की इस प्रणाली का मुख्य साधन वक्रता है। वक्रता में शब्दों को तरासना, अभिधार्य की जगह व्यंजनार्थ पर अधिक ध्यान रखना इस प्रणाली में बहुधा देखा जाता है। ऐसी प्रणाली को लेखक असाधरण स्थितियों के अंकन के लिए ही इस्तेमाल करता है। ऐसी स्थितियाँ अधिक विसंगत स्थितियाँ ही होती हैं। होना और दिखाई पड़ना, बोलना और करना इन में जब संबंध टूटता है तो विसंगत स्थितियाँ जन्म लेती हैं। ये ही विसंगतियाँ व्यंग्य प्रणाली के लिए प्राण-वायु है। विसंगतियों का संप्रेषण जितने सफल एवं अनायास ढंग से इस प्रणाली के द्वारा संभव है उतना और किसी प्रणाली के द्वारा संभव नहीं है। जीवन की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को हंसाते प्रस्तुत करने की क्षमता इस प्रणाली में होने के कारण ही यह प्रणाली अभिव्यक्ति की दुनिया में अधिक सफल एवं सार्थक बन गयी है।

आधुनिक काल के तेलुगु लेखक व्यंग्य प्रणाली की इस शक्ति को अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए जब कभी इस की जरूरत हुई उन्होंने उस का बड़े कलात्मक ढंग से इस्तेमाल किया है। तेलुगु में मुख्यतया व्यंग्यप्रणाली के इस्तेमाल करने के दो मुख्य दौर दिखाई पड़ते हैं। व्यंग्य साहित्य का आरंभिक दौर आधुनिककाल के आरंभ का है जो कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु जमाने का है। दूसरा स्वतंत्र्योत्तर काल का है।

तेलुगु में कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु को प्रथम व्यंग्यकार का गौरव दिया जाता है। उनका 'सत्यराजा पूर्व देश यात्रलु' उपन्यास हास्य-व्यंग्य से भर पड़ा है। इस में उन्होंने आंध्रों की प्राचीन परंपराओं एवं अंधविश्वासों और उन के द्वारा नारी जीवन के शोषण पर खुलकर प्रहार किया है। लेखक ने उन सारी स्थितियों को व्यंग्य के माध्यम से हास्यास्पद बना दिया है। तेलुगु का प्रथम व्यंग्य उपन्यास भी माने जानेवाला 'सत्यराजा पूर्व देश यात्रलु' में नारी जीवन की समस्त विषमताओं और उनके लिए जिम्मेदार पुरुषों की शोषण-दमन नीतियों पर फंतासी के माध्यम से व्यंग्य किया गया है। इस उपन्यास का नायक सत्य राजा है। इस उपन्यास के दो भाग हैं। 1. आड मलयालम 2. लंका द्वीपमु। दोनों भागों की सारी घटनाएँ कल्पित व अतिरंजित हैं। आडमलयालम भाग के आठ अध्याय हैं। पहले के दो अध्यायों में विवाहित सत्यराजा जीवन से पलायन करके चेन्नपट्टनमु, तिरुवनंतपुरमु और बाद में आडमलयालमु में प्रवेश करना आदि प्रसंगों का चित्रण है। तीसरे अध्याय से लेकर आठवें अध्याय तक आडमलयालमु में प्रवेश करना आदि प्रसंगों का चित्रण है। तीसरे अध्याय से लेकर आठवें अध्याय तक आडमलयालमु में रहते हुए सत्यराजा के अनुभव, देखे गए

विचित्र, उठाये कष्ट आखिर वहाँ से लंका द्वीप पहुंचने तक के प्रसंगों का चित्रण है। नारी जीवन सुधार तथा नारी के प्रति जो बुरी धाराणाएँ समाज में हैं, उनसे नारी को मुक्त करने कंदुकूरी ने यहाँ फंतासी के माध्यम से आडमलयालम की कल्पना की है। आडमलयालम में सामाजिक व पारिवारिक सभी अधिकार नारी को ही प्राप्त हैं। पुरुष का कोई अधिकार नहीं होता है। इस रूप में उल्टे शब्दों में आंध्र की सामाजिक कुरीतियों पर तलवार चलायी हैं। आंध्र के समाज में सभी अधिकार पुरुष को ही प्रदत्त हैं। सभी अधिकारों से नारी को वंचित करके उसे एक गुलाम बनाकर शिक्षा से दूर रखकर पुरुष के दुराचार एवं अत्याचारों के शिकार बनाया जाता था। नारी का जीवन इस रूप में कष्टों से भरा कंटकमय रहता था। ठीक वैसे ही जीवन की कल्पना पुरुषों की आडमलयालम में की गयी है। अकेलेपन के शिकार हुए, निराश्रित होकर जीवन की सफलता में धोखे के शिकार होने पर जिस मानसिक यातना से पुरुष गुजर सकता है, इस का निरूपण सत्य राजाचार्युलु के माध्यम से करते हुए इस के द्वारा आंध्र में अनेक युगों से इसी प्रकार का दारुण जीवन बितानेवाली नारी की वास्तविकताओं को बड़े कलात्मक ढंग से उद्घाटित किया गया है। सत्य राजाचार्युलु के चारों तरफ बुनी गयी यह कहानी ठीक उस के विलोम में आंध्र की नारी की थी। आडमलयालम में देखे गये सभी विचित्र आंध्र समाज के ऐसे विकृत दुराचार हैं जो कई युगों से नारी जीवन को अपने दांतों के नीचे दबाकर उत्पीडित करते थे। कंदुकूरी ने चित्रण किया कि आडमलयालम में पुरुषों को शिक्षित होने का अधिकार नहीं है। जिनकी पत्नी नहीं होती थी उन के नाक काट दिए जाते थे। संगीत, साहित्य आदि ललित कलाओं को सीखनेवाले भोग पुरुष (वेश्याओं की तरह) माने जाते थे, पत्नीहीन लोगों के नाक काटने के उत्सवों को मनाने के लिए उस देश की पीठाधिकारिणियाँ देश की यात्रा करती थीं और नियमों एवं आज्ञाओं का उल्लंघनकरनेवालों को सजा दी जाती थी, धन और दंड के साथ साथ उनके घर में अच्छे पकवानों के साथ भोजन स्वीकार करके उन्हें फिर माफ कर देते थे। ये सब आंध्र में उस समय पतिव्रता धर्म के नाम पर नारी पर लागू करते थे। आंध्र में बाल विधवाओं को केश मुंडन किया जाता था। आडमलयालम में पत्नी में मरने पर पति को पत्नी के साथ जीवित गाड़ देने का चित्रण है। कंदुकूरी ने यह भी जोड़ा कि उस रूप में नियम का पालन करनेवाला पति (पुरुष) अपने माँ-बाप की परंपरा के साथ-साथ अपनी पत्नी के माँ-बाप की परंपरा को भी गौरवान्वित करेगा। इस कारण से उन को पुण्य लोक प्राप्त होगा। इस से कंदुकूरी ने सती के लिए दी जानेवाली पराशर स्मृति प्रमाण पर व्यंग्याक्रमण किया है। पराशर स्मृति में कहा गया था कि पति के साथ सती होनेवाली स्त्री को शरीर पर जितने बाल हैं उतने सालों तक यानी तीन करोड़ पचास लाख सालों तक स्वर्ग सुख प्राप्त होगा।

आंध्र में कन्याओं के द्वारा किए जानेवाले व्रत, उपवास आडमलयालम में पुरुषों के द्वारा किए जाते थे। कंदुकूरी के व्यंग्य का लक्ष्य यह था कि साल भर कोई न कोई व्रत उपवास के नाम पर कन्याओं को जानबूझ कर कमजोर बनाया जाता था। ताकि वे किसी भी काम करने में असमर्थ रहें। यह पुरुष का षडयंत्र था। इसलिए उन्होंने चित्रण किया कि आडमलयालम के पुरुष साल भर में किसी न किसी कारण से सात सौ तीस व्रत रखते हैं। आडमलयालम में पुरुषों की स्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है:-

पत्नी गोदित्दन दिदित्दन बाध इडिन
 भाग पुरुषुल बौदिन बौद कोर्णा
 दरुणि ये पुरुषनकुन दैवमनुचु
 भक्ति ननयंगु सेविंप वलयु जुम्मु
 अतिवलकु स्वेच्छा भूषणयैन यट्लु
 पुरुषुलकु लज्जये महाभूषणंबु
 सूर्य चंद्रुल मोग मैन जूड कुंड
 परम पत्नी व्रतुडे पौंदु परमगतुल।

अर्थात् पत्नी के मारने, गाली देने और पीड़ा पहुंचाने पर भी, भोग पुरुषों के साथ भोग करने पर भी (जैसे पुरुष वेश्याओं के साथ भोग करता है) पति को ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। पति पत्नी को ही परमेश्वर मानकर विनय और भक्ति के साथ सेवा करनी चाहिए। जिस रूप में नारी की स्वेच्छा भूषण है उसी रूप में पुरुष के लिए लज्जा महाभूषण है। सूर्य चंद्र के मुख तक को देखे बिना परम पत्नी व्रत रखनेवाले पति को स्वर्ग सुख प्राप्त होंगे।

स्पष्ट है कि समाज में प्रचलित पति ही परमेश्वर है, लज्जा ही नारी के आभूषण, पतिव्रता धर्म ही स्वर्ग सुख को लाता है आदि धारणाओं पर कंदुकूरी ने आक्षेप किया है। उपन्यास के अंतिम अध्याय में अपनी मालकिन की माँ की सहायता से मंत्र प्राप्त करके सत्य राजाचार्युलु आडमलयालम से मुक्ति पाता है। आकाश मार्ग में यात्रा करके लंका द्वीप पहुंचता है। 'लंका द्वीप' इस उपन्यास का दूसरा भाग है। कंदुकूरी ने गलीवर्स ट्रावल्स का दूसरा भाग 'ए वायेज टू बाबडिंग नाग' के अनुसरण में इस को लिखा है। स्विफ्ट की तरह कंदुकूरी ने इस में महाशरीरवाले लोगों का चित्रण किया है। लंका द्वीप के बरगद के पेड़ हमारे देश के पेड़ों से सौ गुणा बड़े हैं। बरगद के फल ताड़ी के फलों जैसे बड़े हैं। वहाँ की चीटियाँ चूहे जैसी होती हैं, आदि वर्णन किया है। मुख्य रूप से उपन्यास के इस भाग में आंध्रवासियों के अंधविश्वासों एवं ज्योतिशास्त्र के विश्वासों पर व्यंग्य किया है। उदाहरण के लिए लंकाद्वीप में राहु ग्रह है। देवताओं के गुरु बृहस्पति उनके लिए पाप ग्रह हैं। जिस रूप में आंध्र में राहुकाल अच्छी मुहूर्त नहीं मानी जाती है, लंकाद्वीप में बृहस्पति काल अच्छी मुहूर्त नहीं मानी जाती है। इस प्रकार कंदुकूरी ने सत्य 'राजा पूर्व देश यात्रलु' में आंध्र की नारी और उसके जीवन की विडम्बनाओं, सामाजिक दुराचारों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों पर करारा व्यंग्य किया है। इस के अतिरिक्त अभाग्योपाख्यानमु काव्य, अनेक प्रहसन नाटक (जैसे वेश्या प्रिय प्रहसनमु, स्वर्ग लोक सुखमु, शकुनमुलु, चंद्र ग्रहणमु-तेलुमंडु आदि) बहुत लोकप्रिय हुए हैं। कंदुकूरी के बाद गुरजाडा अप्पाराव में भी व्यंग्य सृजनशीलता दिखाई पड़ती है। उनके 'कन्याशुल्कमु' नाटक में व्यंग्य का पुट है। नाटक में अप्पा राव जी ने गिरीशम पात्र के द्वारा पर्याप्त व्यंग्य सृजनशीलता दिखाई पड़ती है। उनके 'कन्याशुल्कमु' नाटक में व्यंग्य का पुट है। नाटक में अप्पा राव जी ने गिरीशम पात्र के द्वारा पर्याप्त व्यंग्य सृजन किया है।

कंदुकूरी के समकालीन अन्य व्यंग्य-लेखकों में मोक्कपाटि नरसिंहाशास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है। उनका 'बारिष्टर पार्वतीशम' व्यंग्य उपन्यास तेलुगु में अत्यंत लोकप्रिय है। लेखक ने अपने निजी अनुभवों को कल्पित पात्र पार्वतीशम पर आरोपित कर के इस में बड़ा ही व्यंग्य

उपजाया है। इस उपन्यास के तीन भाग हैं। मुख्य पात्र पार्वतीशम है। अपने हास्य-व्यंग्यमय प्रवृत्ति के लिए पार्वतीशम तेलुगु में जीवंत एवं अमर पात्र बन गया है। चार्लि चाप्लिन की तरह एक उदात्त तत्त्व पार्वतीशम में दिखाई पड़ता है। पार्वतीशम पश्चिम गोदावरी जिले के मोगलतुर गांव में पैदा होकर लंदन जाता है। शिक्षित होकर वकालत करने भारत लौट आता है। अंत में राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते लेते असफल होकर अपना गांव लौटता है। लंदन में एक युवती के साथ प्रेमकांड चलाता है। तत्कालीन आंध्र की सामाजिक परिस्थितियाँ, अंग्रेजी शिक्षा का प्रयोजन, विदेशी यात्रा के अनुभव इस में हास्य-व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यंजित हुए हैं। पार्वतीशम के व्यवहार, उसकी भूले, मूर्खता, गडबड़ियाँ विस्मय आदि हास्य उत्पन्न करने के साथ करारा व्यंग्य भी उपजाते हैं।

पार्वतीशम की जीवनी के माध्यम से मोक्कपाटि ने सामाजिक जीवन में वह भी ब्राह्मणों के पारिवारिक जीवन में व्याप्त विविध अंधपरंपराओं, विश्वासों-मान्यताओं पर करारा व्यंग्य किया है। शिक्षा जगत में व्याप्त अनेक विषमताओं का चित्रण भी मोक्कपाटि ने किया है। अपने गांव की पाठशाला की शिक्षा पूरा करके पार्वतीशम नरसापूर के टैलर स्कूल में प्रवेश लेता है। इस बहाने उपन्यासकार ने पाठशालाओं में विद्यार्थी और अध्यापकों के बीच में बढ़नेवाली दूरी पर व्यंग्य किया है। पार्वतीशम यह स्पष्ट करता है कि यहाँ के स्कूल में हमारे गांव की तरह चटाई पर बैठने की जगह बेंचों पर बैठते हैं। अध्यापक दूर कुर्सी पर बैठता है। इस से दोनों के बीच में दूरी का अनुभव होता है। इस के अतिरिक्त मोक्कपाटि ने इस में अपने समय की राजनीतिक विसंगतियों पर व्यंग्य किया है।

चिलकमर्ति लक्ष्मि नरसिंहम भी इस कोटी के व्यंग्यकार हैं। उन्होंने भी कई प्रहसन नाटक लिखे हैं। उनका व्यंग्य उपन्यास 'गणपति' अत्यंत लोकप्रिय हुआ है। चिलकमर्ति ने 'गणपति' उपन्यास के द्वारा अपने समय के युवा वर्ग में व्याप्त विविध दुर्बलताओं पर करारा व्यंग्य किया है। अपने समय के युवक आलसी, पेटु, विद्याहीन, व्यसन लोलुप बनने से समाज कैसे कमजोर हो रहा है, गणपति के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गणपति जैसे युवकों के कारण समाज को कितना बड़ा नुकसान होता है व्यंग्य के माध्यम से समझाया है। 'गणपति' भी एक जीवनी परक उपन्यास है। एक दुर्भाग्य, अनपढ़ ब्राह्मण युवक जीविका प्राप्त करने में उठाने अनेक कष्टों का इस में व्यंग्य के माध्यम से चित्रण किया गया है। गणपति गोदावरी प्रदेश के मध्य वर्गीय परिवार के आचार व्यवहार, अंधविश्वास, नालायकी, जैसी सामाजिक विसंगतियों को प्रतिबिंबित करता है। गणपति बचपन से काम चोर, स्कूल जाना पसंद नहीं करनेवाला, पढ़ाई-लिखाई में दुर्बल, जुआ खेलने में इच्छुक, शराब पीने में रुचि रखनेवाला है। इस के लिए वह घर में चोरी भी करता है। गणपति के माध्यम से लेखक ने अपने समय के युवा वर्ग का व्यंग्यात्मक परिचय दिया है। गणपति जीविका के लिए नौकरियाँ करता है। अध्यापक बनने के बाद भी उसे अध्यापन कम चुरटा पीना पसंद है। अधिकांश समय सोया रहता है। एक विद्यार्थी के द्वारा एक साधारण पद्य सुनाने का सवाल उठाकर उस में गणपति की पूरी असमर्थता पर व्यंग्य किया है। गणपति पद्य गलत से ही सुनाता है। इससे अपने समय के अध्यापकों की प्रतिभाहीनता पर गहरा व्यंग्य उभरता है। जीवन की अनेक घटनाओं के मध्य में चिलकमर्ति ने गणपति का केरिकेचर ही प्रस्तुत किया है।

पानुगंति लक्ष्मि नरसिंहम राव भी इस युग के श्रेष्ठ व्यंग्यकारों में एक हैं। उनका

‘कंठावरणमु’ नाटक ‘साक्षि’ नाम से प्रकाशित अनेक निबंध, ‘हास्य वल्लरी’ नाम से प्रकाशित प्रहसन नाटक व्यंग्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। मोक्कपाटि नरसिंहा शास्त्री का ‘वारिष्टर पार्वतीशम’ अत्यंत लोकप्रिय व्यंग्य उपन्यास है। इन के अलावा कूचिमंचि जग्गा कवि (चंद्ररेखा विलापमु), तिरुपति वेंकट कवुलु (गीरतमु), त्रिपुरनेनि रामस्वामी चौधरी (सूत पुराणमु) आदि कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में व्यंग्य सृजन किया है। इस प्रकार आधुनिक तेलुगु साहित्य में अंग्रेज शासन के विरोध में तथा तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों एवं विषमताओं के विरोध में बड़ी मात्रा में व्यंग्य सृजन किया गया है।

तेलुगु में दूसरे दौर का व्यंग्य सृजन स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ है। वह भी विशेषकर साठोत्तर काल में। यह काल व्यापक मोहभंग का, आस्थाओं के टूटने का, स्वार्थ-भ्रष्टाचार के दल दल में फंसने का काल रहा है। इस दौर की सब से बड़ी विशेषता कथनी और करनी का अंतर, कहने और होने के अंतर का है। स्वार्थ से परिचालित भ्रष्टाचार में सर तक डूबा आज का आदमी जैसे दिखाई पड़ता है वैसे होता नहीं। जैसे होता है वैसे दिखाई नहीं पड़ता है। अन्याय, अधर्म, अनीति खुलकर सामने आते हैं तो उनकी पहचान ही नहीं निवारण भी सरल होता है। परन्तु आज सब कुछ गलत सही के नाम पर हो रहा है। सत्य की पहचान तथा उसकी अभिव्यक्ति भी आज आसान नहीं रही। यह एक जटिल स्थिति है। इस की पहचान करना तथा उसकी अभिव्यक्ति के द्वारा सुधार या चेतना लाना एक चुनौती भरा प्रश्न है। प्रतिबद्धलेखन करनेवाला आज का लेखक इस चुनौती को व्यंग्य सृजन के द्वारा ही स्वीकार कर रहा है। क्यों कि व्यंग्य में भी साहित्यिक शिष्टता के नाम पर व्यक्ति की कमजोरियों पर अप्रत्यक्ष रूप में ही हंसाया जाता है। हंसते हंसते ही कोड़े लगाया जाता है। इस दृष्टि से व्यंग्य दिखावे के परदे को चीर कर अपने रोषपूर्ण कडुवेपन से भरे सत्य को अंदर तक ले जाकर बहुत आसानी से पहुंचा देता है। तेलुगु में स्वातंत्र्योत्तर काल में बड़ी मात्रा में हुए व्यंग्य लेखन ही इसका अकथित साक्ष्य प्रमाण है। तेलुगु में आज कोई ऐसी साहित्यिक विधा नहीं है या कोई ऐसा साहित्यिक आंदोलन नहीं है या कोई पत्र-पत्रिका नहीं है जो हास्य-व्यंग्य सृजन से सर्वथा पृथक हो। इस दृष्टि से तेलुगु में स्वातंत्र्योत्तर काल में हुए दूसरे दौर का व्यंग्य सृजन बहुत व्यापक और महत्वपूर्ण है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में तेलुगु में भी बड़ी संख्या में व्यंग्य सृजन हुआ है। तेलुगु के लेखकों ने उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध विधाओं के साथ साथ कविता शिल्प को भी व्यंग्य सृजन के लिए उपयोग किया है। तेलुगु व्यंग्य उपन्यास-लेखकों में विश्वनाथ सत्यनारायण जी का भी नाम लिया जा सकता है। उनका ‘हा हा हू हू’ एक फंतासी उपन्यास है। उपन्यास में ‘हा हा हू हू’ नामक एक गंधर्व किसी कारण से घायल होकर खून से लतपत होकर लंदन में ट्रेपालगर नामक प्रदेश में गिरता है। उसकी बेहोशी हालत में नगरवासी उसे घेरते हैं। गंधर्व का धड़ तक मनुष्य का शरीर है। सर उसका घोड़े का है। इस विचित्र पशु का समाचार पूरे देश में करते हैं। अपने अपने ढंग से निष्कर्ष भी निकालते हैं कि वह मनुष्य नहीं है पशु है। पशु भी नहीं है विचित्र पशु है। विशेषज्ञ उससे सवाल भी करते हैं। उस का नाम भाषा वैज्ञानिक हा हा हू हू रख देते हैं। प्रत्येक का हम ने ही अन्वेषण-अविष्कार किया है, सभी क्षेत्रों में हम ही समर्थ हैं। दूसरे हमारी समानता नहीं कर सकते हैं, ऐसा गर्व करनेवाले अंग्रेजों पर व्यंग्य करने यह उपन्यास लिखा गया है। हा हा हू हू का

कई प्रकार से परीक्षण किया जाता है। बेहोश करके उसकी शस्त्र चिकित्सा भी करते हैं। फिर भी इस निष्कर्ष पर आने में वे असफल होते हैं कि वह मनुष्य है या जानवर है। अंग्रेजों के द्वारा किए जानेवाले इन फूहड परीक्षणों के माध्यम से प्रत्येक विषय को तार्किक दृष्टि से देखने की उनकी कमजोरी पर करारा व्यंग्य किया गया है। भारतीयों की चिंतन दृष्टि उसकी विशेषताओं को इस रूप में उच्च दिखाने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है। इस के अतिरिक्त विश्वनाथ सत्यनारायण का 'विष्णुशर्मा इंग्लीष चदुवु' (1961), पालगुम्भि पद्मराजु का 'रेंडव अशोकुनि मुन्नाल्ला पालना' (1969), मुल्लपूडि वेंकटरमण का 'ऋणानंदालहरी' (1972), मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री का 'इद्दरम्माइलु मुगु रब्बाइलु' (1973) मुल्लपूडि वेंकट रमण का 'कार्खानोपाख्यानमु' (1975) रायसम वेंकटरामय्या का 'चलपति जिंदाबाद' (1997) आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री पालगुम्भि पद्मराजु के 'रेंडव अशोकुनि मुन्नाल्ल पालन' व्यंग्य उपन्यास में राजनीतिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य किया गया है। इस में आंध्र के पश्चिमी गोदावरी जिले में पैदा हुए पंडित श्री श्री श्री मोरि अशोक वर्धन राजु के भारत के सम्राट के रूप में स्वीकार करने के पहले दस साल के आपातकाल की परिस्थितियों का व्यंग्यात्मक चित्रण उपन्यास में किया गया है। हमारे नेताओं ने प्रजातंत्र को तोड़कर प्रभुतंत्र को अपनाया है। उपन्यासकार ने नेताओं की विसंगत कार्रवाइयों के द्वारा प्रजातांत्रिक व्यवस्था में भविष्य में होनेवाले दुष्परिणामों की ओर इशारा किया है। सरकार की किसी भी समस्या को सुलझाने की टलाऊ नीति जैसी मुख्य विसंगति के साथ-साथ देश में कई सालों से दम तोड़नेवाली भाषा नीति जैसी विसंगतियों पर व्यंग्य किया गया है। उपन्यास में सरकार की समस्या सुलझाने की टलाऊ नीति को अनेक रूपों में हास्यास्पद बनाया गया है। उपन्यासकार ने मुख्यतया गोदावरी-कृष्णा नदियों के विवाद की समस्या, मैसूर तथा महाराष्ट्र की सीमा संबंधी समस्या आदि का उल्लेख किया है। पहलीवाली समस्या के संबंध में बिठायी गयी 92 कमिटियों की रिपोर्ट पढ़ने के लिए चार साल लगेंगे। इसलिए एक एक विधायक सिर्फ एक साल के लिए ही मंत्री बनेगा। रिपोर्टों का पढ़ना पूरा होने के पहले ही सरकार का समय पूरा हो जाएगा। समस्या को सुलझाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। लेखक ने व्यंग्य से यह भी कहा कि आज मंत्री पद के लिए विधायक दलबदल कर रहे हैं। इस से आगे विपक्ष नहीं होगा सभी विधायक बारी बारी से एक एक साल के लिए मंत्री बनते जाएंगे।

आजादी के पचास सालों के बाद भी राजभाषा हिन्दी का कार्यान्वयन भारत में ठीक से नहीं हो पाया है। इस संवेदनशील समस्या को लेखक ने व्यंग्यप्रणाली के माध्यम से न केवल संप्रेषित करने का प्रयास किया बल्कि उस का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अशोक वर्धन राजू सिंहासन पर आरूढ हुए। उन्होंने अपनी मातृ भाषा तेलुगु में भाषण दिया। उस का विश्व की अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। परन्तु लोक सभा में हिन्दी के पक्षधर, त्रिपाठी तथा सुगमचंद लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इस का विरोध किया। तब राजा ने उत्तर दिया कि हिन्दी बोलनेवाले, समझनेवाले सदस्यों में कई द्वेष और अनबन है। इन की संख्या ज्यादा होने के कारण हर समय वे लोकसभा में हल्ला मचाते हैं। यह मेरे लिए सरदर्द बन गया है। एक दूसरे की भाषा समझ में नहीं आएगी तो ऐसी समस्या नहीं होगी। इसलिए वह प्रादेशिक भाषाओं को महत्व देने के साथ साथ हिन्दी की जगह ब्राह्मी लिपि समेत पैशाची भाषा को भारत की राष्ट्र भाषा के रूप

में घोषित कर देता है। इस घोषणा के विरोध में लोक सभा में हंगामा होता है। धरना भी किया जाता है। गुस्से में राजा आदेश देता है कि विरोध करनेवाले सभी को एक कमरे में बंदी बना दिया जाय तथा तब तक उनको मुक्त नहीं किया जाय जब तक वे ब्राह्मी लिपि तथा पैशाची भाषा नहीं सीखते हैं। स्पष्ट है कि उपन्यासकार ने लोक भाषा में प्रादेशिक भाषाओं का इस्तेमाल करने की मांग करनेवालों पर करारा व्यंग्य किया है। इस के अतिरिक्त पद्म राजु ने राजनीतिक नेताओं के अनेक विसंगत व्यवहारों का भी व्यंग्य प्रणाली के माध्यम से पर्दाफाश किया है। मुल्लापूडि वेकंटरमण के द्वारा लिखित 'ऋणानंद लहरी' व्यंग्य उपन्यास में आधुनिक मध्यवर्गीय आदमी की ऋण करने की दुर्बलता पर करारा व्यंग्य किया गया है। आधुनिक आदमी के जीवन में पैसे का महत्व हो गया है। साधनहीन मध्यवर्गीय आदमी उसे प्राप्त करने के लिए ऋण लेने की गलती करता है। इस एक गलती से बचने के लिए बार बार गलती करता है। उपन्यासकार ने उपन्यास की सारी घटनाओं को ऋण के इर्द गिर्द ही सृजित किया है। उनके अनुसार जिंदगी ही सबसे बड़ा ऋण है। उपन्यास का मुख्य पात्र अप्पाराव है। अप्पाराव कई प्रकार के ऋण करता है। इतना ही नहीं ऋण करने की अनेक तरकीबों को वह बताता है तथा समय समय पर अमल करता है। अप्पाराव के माध्यम से राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकारों की ऋण करने की नीति पर भी लेखक ने व्यंग्य किया है। नागलक्ष्मी, सुब्बन्ना इस उपन्यास के अन्य मुख्य पात्र हैं।

उपन्यास को प्रभावी बनाने के लिए उपन्यास में ऋणाध्यानि, ऋण सूक्त, ऋणवचन, ऋण लीला, ऋण प्रतिष्ठा आदि शीर्षकों का प्रयोग भी किया है। उपन्यासकार ने इस में पैरोडी शैली का प्रयोग किया है। तेलुगु के प्रसिद्ध कवि पोतना के भागवत के पद्य के अनुकरण में लिखे गए एक पैरोडी द्रष्टव्य है--

एवनिचे जनिंचु ऋणमेवनिचे भ्रमिंचु लोकमं
 देवनि बुद्धि ये ऋण द मेव्दु नव्दुतु नप्पु लिच्चु दा
 निव्वग जालनं चनक निव्वग जालग, दिप्पनट्टि वा
 डेव्दु आ ऋणात्सु ऋणदेश्वरु नेनु ऋणंबु वेडेदेन।

अप्पाराव के द्वारा बतायी गयी ऋण तरकीबों में लेखकों ने मिथकीय पात्रों एवं प्रसंगों का भी सहारा लिया है। जैसे पैसे की जरूरत पड़ने पर एक बार युधिष्ठिर ऋण मांगने के लिए भीम को कुबेर के पास भेजता है। कुबेर भीम से ब्याज के बारे में पूछता है। लौटकर भीम युधिष्ठिर से ब्याज के बारे में पूछता है। युधिष्ठिर ब्याज देने का तैयार होता है। इस के द्वारा लेखक ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि ब्याज पौराणिक काल से ही भारत में प्रचलित है। इस के अतिरिक्त लेखक ने बड़ी प्रतिभा से प्रस्तुत किया कि कर्ण सुयोधन से ऋण लेकर दान देते थे। दूसरे सम्राटों से ऋण लेने की तरकीबों के बारे में नहीं जानने के कारण ही हरिश्चंद्र नक्षत्रक की यातनाओं का शिकार हुआ है। लेखक ने अंत में यह सिद्ध किया कि ऋण पृथ्वी, नेजस्सु, वायु, आकाश समेत पंच भूतों में एक है। स्पष्ट है कि लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से ऋण के महत्व को सिद्ध किया है। ऋण करने की अनेक तरकीबों को समझाया। अंत में फलस्रुति के बारे में लिखा है कि इस उपन्यास के पढनेवाले अप्पाराव जैसे आदमी को बुलाकर उसे पांच रूपये की ऋण दक्षिण देने से ऋण-पुण्य मिलेगा।

व्यंग्य नाटकों की श्रेणी में वरविक्रयमु, चिंतामणि (काल्लकूरि नारायण राव), प्रताप रुद्रीयमु (वेदम वेंकटराय शास्त्री) आदि रचनाएँ, बड़ी संख्या में लिखे गए व्यंग्य निबंध तेलुगु व्यंग्य साहित्य भंडार को समृद्ध बनाते हैं। इन के अतिरिक्त पुरिपंडा, कुंडुर्ति, आरुद्रा, जरुक शास्त्री, ज्वालामुखी, देवि प्रसाद, नग्न मुनि, कालोजी, पठाभी, तिलक, गज्जेल मल्ला रेड्डी, श्रीश्री, सोमसुंदर जैसे कवियों ने व्यंग्य कविताएँ लिखी हैं। तेलुगु की कविता में विशेषकर अभ्युदय कविता के बाद व्यंग्य का स्वर अधिक उभरा है। भापाई पाकट्रीट मेंट देनेवाले दिगंबर कवियों ने भी व्यंग्य का सहारा लिया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है--

डाक्टरु, याक्टरु, इनस्ट्रक्टरु,
 अटेंडरु, कमांडरु,
 एवरु एदि कावलन्ना
 वुंडालि कनीसार्हतलु कानि
 देशान्नि रक्षिंचे, शासिंचे, पालिंचे
 परम पवित्र समर्थवंत
 बाध्यतयुत अधिकार पीठमु
 अधिरोहिंचडानिकि मात्रमु
 ए अर्हत अक्कल्लेदु

ए योग्यता चूपनवसरमु लेदु। (जम्मि चेदु नग्न मुनि)
 सामाजिक क्रांति का आह्वान करनेवाले विप्लव कवियों की कविताओं में भी व्यंग्य का स्वर गूँज उठा है। चेरबंडराजु के निम्न विचार आजादी-प्राप्ति पर ही संदेह प्रकट करते हैं।

एदि स्वातन्त्रमु ?
 एदि स्वातन्त्रमु ?
 यज्ञोपवीताल शंकर लिंगाल
 विभूत रुद्राक्ष मालल नेपमु तो
 शांति, मोक्षाल व्यामोहमु लो
 देश प्रजल कल्लु गप्पि
 पन्नीटि स्नानाललो,
 संतान भक्तुरांड़ परिश्वंगमु लो
 विदेशी मदिराल मैकमुलो जवरांड़ ऊरुवुल निशालो
 पट्टु पुरुपुल शय्य सौक्याल्लो
 निरंतर सुख रोगु लैन
 भारतीय बाबाल, योगुल
 अंतर्जातीय व्यापारमा स्वातंत्रमु ?

स्पष्ट है कि प्रतिबद्ध लेखन की दिशा में तेलुगु में विकसित दिगंबर कविता और विप्लव कविता में उभरा व्यंग्य परिस्थितिजन्य है। विसंगत परिस्थितियों के होते वक्रपूर्ण अभिव्यक्ति ही ज्यादा सफल और प्रभावी होती है। इसलिए तत्कालीन कवियों ने अपने प्रतिबद्ध लेखन के लिए

व्यंग्य को एक अमोघ अस्त्र के रूप में उपयोग किया है। गज्जेल मल्ला रेड्डी जैसे कवियों ने तो व्यंग्य का भर पूर इस्तेमाल किया है। उनकी अधिकांश कविताओं में राजनीतिक व्यंग्य बड़ी मात्रा में उभरा है। 'तारक मंत्रमु' में उन्होंने राजनीति में आकर संकीर्ण मार्ग अपना कर दलबदल के द्वारा अपने स्वार्थ साधनेवाले नेताओं की पोल खोली है ---

पार्टि ने देशंगा

क्रम पद्धतिन मार्चिनामु

एडादिकि मूडु सालू

एडु कोंडलेक्कुतामु

पापनाशनमु लोन पापालनु कडुगुतामु।

साहित्य सृजन के लिए शिल्प चेतना एक अनिवार्य प्रक्रिया है। शिल्प लेखक की अनुभूति को मूर्त रूप देता है। रचना का रूप निर्धारण बहुत कुछ लेखक के व्यक्तित्व और विषय-वस्तु की संवेदना पर निर्भर रहता है। यानी लेखक अपने व्यक्तित्व और विषय वस्तु की आवश्यकता के अनुरूप ही शिल्प ग्रहण करता है। लेखकीय व्यक्तित्व विषय वस्तु या अनुभूति से प्रभावित होता है। अतः विषय वस्तु में परिवर्तन लेखकीय व्यक्तित्व में परिवर्तन लाता है। यह परिवर्तन नवीन शिल्प ग्रहण की ओर लेखक को उन्मुख करता है। साहित्य का इतिहास ही इस का साक्षी है कि लेखकीय व्यक्तित्व और विषय वस्तु के अनुरूप ही हिन्दी और तेलुगु में नवीन साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ है। यह माना जाता है कि जिस में अनुभवों के संक्षिप्तीकरण की असीम प्रतिभा होती है जिसके व्यक्तित्व में बिंब प्रधान होता है वह कवि बनता है। जिस में अनुभवों तथा घटनाओं को विवरणात्मक विस्तार देने की सृजनात्मक क्षमता होती है वह कथाकार बनता है, जिस में संवादों के माध्यम से अर्थ शक्तियां उद्घाटित करने की कार्रङ्गी कला होती है वह नाटककार बनता है। इसी प्रकार जिस में विचारों की प्रधानता और आक्रोश को व्यक्त करने की वक्र दृष्टि होती है वह व्यंग्यकार बनता है। यानी लेखक की आहत चेतना और उसे व्यक्त करने की वक्र दृष्टि उसे व्यंग्य लिखने के लिए विवश करती है।

साठोत्तर तेलुगु के व्यंग्य लेखकों की आक्रोश जन्य वक्र दृष्टि प्रारंभ में परंपरागत उपन्यास, नाटक, निबंध, कहानी, कविता के माध्यम से व्यक्त हुई। जब उनकी आहत चेतना मर्मांतक हो गयी तब उन्होंने पुराने शिल्पों को छोड़कर नवीन शिल्प प्रयोग किए। उन्होंने यह अनुभव किया कि अपने आक्रोश की वक्रता के लिए उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, कविता आदि पुराने शिल्प अपर्याप्त एवं असंबद्ध हैं। उन्होंने आक्रोश की वक्रता की सार्थक संप्रेषणीयता के लिए सर्वथा नवीन शिल्प 'व्यंग्य' का जन्म दिया।

व्यंग्य लेखकों ने अपने समय में प्रचलित संक्षिप्त साहित्यिक रूप कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण और निबंध आदि के निकट ही एक नवीन शिल्प व्यंग्य का निर्माण किया। इसमें उन्होंने पाठकों को बांध कर रखने के लिए कथा तत्व से तथा विचारों को आसानी से व्यक्त करने की आजादी रखनेवाले निबंध तत्व को जोड़ा है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस नवीन शिल्प में विचारों को स्वेच्छा से प्रस्तुत करनेवाला निबंध तत्व तथा घटना-प्रसंग-पात्र के द्वारा यथार्थबोध करानेवाले कहानी तत्वों का मिश्रण रहता है। 'व्यंग्य' नाम से घोषित ये रचनाएं व्यंग्य निबंध से

निकट तो है परन्तु उन से अलग भी है। इसी रूप शिल्प को तेलुगु में 'व्यंग्य' (विधा का नाम) नाम दिया जा रहा है। इस में कहानी और निबंध के तत्वों का सम्मिश्रण ही नहीं बल्कि रेखाचित्र तथा संस्मरण के तत्वों का मिश्रण भी देखा जा सकता है।

तेलुगु में यह अति नव्य शिल्प चेतना कवन शर्मा (कंदुल वराह नरसिंह वर्मा), के व्यंग्य कवनालु, कानफरेन्सुल तिरुनाल्लु, नडि 'चेडु' वाडु, शतप्रवेश परीक्षावधानमु, अर्धागुल आर्थिक सूत्रालु, चट्टमु चुट्टमु आदि में मिलती हैं। इस शिल्प चेतना की रचनाएं संग्रहों के रूप में तेलुगु में कम मिलती हैं। परन्तु तेलुगु की पत्र-पत्रिकाओं में रखकर दैनिकी पत्रिकाओं में सत्तेकालमु, माटामंती, रंगुल राटनमु, उलुकु पलुकु, ध्वनि प्रतिध्वनि, पिच्चिमालोकमु, पुण्यभूमि आदि शीर्षकों के अंतर्गत इस शिल्प चेतना की रचनाएँ बड़ी मात्रा में छप रही हैं। तेलुगु की कुछ प्रतिनिधि 'व्यंग्य' रचनाओं के विश्लेषण से इस का स्पष्टीकरण ही नहीं बल्कि पुष्टिकरण भी हो जाता है।

तेलुगु में कवन शर्मा की रचना 'यात्रा' भी इसी कोटि की रचना है। कवन शर्मा ने इसे 'व्यंग्य' नाम देने की जगह 'व्यंग्य कवनमु' कहा है। कवन शर्मा ने इस में अपने विश्वविद्यालय जीवन की विहार यात्रा के संस्मरण के रूप में प्रस्तुत किया है। इस में चित्रित पात्र उनके निजी जीवन के जीवंत पात्र हैं। रचना की शुरुआत निबंध जैसा ही होता है। शुरु में विश्वविद्यालय जीवन, विश्वविद्यालयों में अध्यापन की असंगतियां, चार सालों के पाठ्यक्रम की निरर्थकता, पाठ्यक्रम के अंतर्गत की जानेवाली विहार यात्रा और उसकी व्यर्थता पर व्यंग्य किया गया है। यहां तक रचना निबंध जैसा वैचारिक रुख अपनाती है। आगे विहार यात्रा के संबंध में छात्र एवं अध्यापकों के निर्णय से रचना कहानी और संस्मरण का रूपधारण कर लेती है। विहार यात्रा विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन करने के लिए नहीं बल्कि अध्यापकों के अनदेखे स्थानों का विहार करने के लिए आयोजित होती है। आगे शर्माजी ने रेल गाड़ी में बैठकर जाने से लेकर फिर लौटने तक घटित समस्त विसंगत घटनाओं के माध्यम से इस प्रकार की यात्राओं के खोखलेपन पर करारा व्यंग्य किया है। रचना का उत्तर भाग बहुत कुछ कहानी जैसा ही लगता है। इस रूप में इस रचना का शिल्प हिन्दी की स्वतंत्र विधागत रूप 'व्यंग्य' से काफी निकट पड़ता है। स्वतंत्र विधागत हिन्दी की रचना 'व्यंग्य' अगर अपने में अधिक निबंध के तत्वों को समेट लेता है तो तेलुगु की यह 'कवनमु' रचना अपने में निबंध की जगह कहानी के तत्वों को साथ में लेकर चलती है।

उनकी कान्फरेन्सुल तिरुनाल्लु, नडिचेडुवाडु, शत प्रवेश परीक्षावधानमु, अर्धागुल आर्थिक सूत्रालु, चट्टमु चुट्टमु, संघ पुराणमु आदि रचनाएं भी इसी प्रकार की हैं। इन रचनाओं में प्रसंगों के साथ साथ पात्रों का भी चित्रण है। साथ ही निबंधों की तरह श्रृंखलाबद्ध विचारों की भरमार भी है। इन में कवनशर्मा की व्यंग्य शैली अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है। इस के अतिरिक्त तेलुगु की पत्र-पत्रिकाओं में मात्र व्यंग्य सृजन के लिए इस नये शिल्प का अधिक प्रयोग किया गया है। खास कर दैनिकी पत्रिकाओं में इस प्रकार के स्तंभ काफी लोकप्रिय हो रहे हैं। सत्तेकालमु, माटा मंती, रंगुल राटनमु, उलुकु पलुकु, ध्वनि प्रति ध्वनि, पिच्चिमालोकमु, पुण्य भूमि आदि शीर्षकों के अंतर्गत लिखे गए व्यंग्य कवन शर्मा के व्यंग्यों से काफी मेल खाते हैं।

तेलुगु के लेखकों ने पैरोड़ी का सुंदर प्रयोग किया है। ऋणानंद लहरी' उपन्यास में मुल्लपुडी ने सुंदर पैरोड़ी का प्रयोग किया है---

एवनिचे जनिंचु ऋण मेवनिचे भ्रमिंंचु लोकमन्दे
वनि बुद्धिये ऋणद मेव्वडु नव्वुचु नप्पुलिच्चु दा
निव्वग जालनं चनक निव्वगजालग, दिप्पु नट्टि वा
डेव्वडु आ ऋणात्तु ऋणवेश्वरुडनु नेनु ऋणंबु वेडेदना।

देवी प्रसाद ने 'रहदालु' शीर्षक कविता में श्री श्री का अनुकरण किया है।

ए रोड्डु चरित्र चूसिन
एमुन्नदि गर्व कारणमु
रहदारी समस्तमु चरित्र
धूलि धूसरि परिव्यस्तमु।

इन के अलावा तेलुगु के लेखकों ने अपने व्यंग्य सृजन के लिए पौराणिक प्रसंगों-पात्रों, ऐतिहासिक प्रसंगों और पात्रों को, कोष्टकों को, व्यंग्य सूक्तियों को व्यंग्य सृजन के लिए उपकरणों के रूप में ग्रहण किया है।

साहित्य के सामाजिक उपयोगितावादी विचारों को बल मिलने के साथ ही आधुनिक तेलुगु लेखकों ने सहज ही व्यंग्य सृजन किया है। उल्लेखनीय बात यह है कि वस्तु ग्रहण करने के लिए उन्हें अन्यत्र कहीं खोज करने की जरूरत नहीं हुई। स्वार्थ-भ्रष्टाचार के दल दल में फंसा आज का आदमी और उस की समस्त विसंगतियाँ उनके व्यंग्य सृजन के लिए यत्रतत्र सर्वत्र मिल रही हैं। परिस्थितिजन्य इस व्यंग्य स्थिति में व्यंग्य का सृजन न करना ही बड़ी बात होती है। न कि व्यंग्य सृजन करना। तेलुगु में बड़ी मात्रा में हुए व्यंग्य सृजन इसलिए प्रतिबद्ध लेखन का मार्मिक अस्त्र बना है। आज व्यंग्य सृजन साहित्य की उपादेयता को शतप्रतिशत निभाते हुए अन्य किसी साहित्यिक आंदोलन या किसी सामाजिक आंदोलन से कम नहीं लगता है। समय की मांग के अनुसार तथा संप्रेषणीयता के सुलभ लक्षणों को देखते हुए तेलुगु में व्यंग्य सृजन का किंवा वक्रपूर्ण प्रतिबद्ध लेखन का उज्ज्वल भविष्य नजर आता है।

...

संपर्क-सूत्र :- आचार्य एवं उपप्राचार्य, हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,

तिरुपति-517502 मो:09849670868

सत्य और तर्कयुक्त कल्पना का अद्भुत सामंजस्य और चलम् के तेलुगु एकांकी

- डॉ.एस.कृष्ण बाबु

श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम तेलुगु के एक प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित साहित्यकार हैं। इन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में अपनी अद्वितीय प्रतिभा के बल पर अनेकानेक अद्भुत रचनाएं की। लेकिन आम पाठकों में इनके उपन्यास और कहानियां काफी प्रचलित हैं। साधारण पाठक गण इनके कथा साहित्य में ज्यादातर स्त्री स्वातंत्र्य और स्वच्छन्द यौन संबंधों के महत्व को ही देखते हैं। लेकिन यह एक विचारणीय विषय है कि चलम का साहित्य दर्शन ही कुछ अलग है। उनका चिन्तन अत्यंत तार्किक एवं गंभीर होने के कारण उनकी रचनाएं चिन्तनशील पाठकों को बहुत समय के लिए सोचने को मजबूर कर देती हैं। कई लोग यह जानते भी नहीं कि उन्होंने मिथकीय परिप्रेक्ष्य में कई एकांकियां भी लिखे जिनमें कुछ पौराणिक आख्यानों और उनके पात्रों को लेकर उन्हें एक नये कोण में देखने और उस आधार पर कुछ नए जीवन मूल्यों को उजागर करने का सफल प्रयास किया गया। चलम ने स्वयं स्वीकार किया था कि उनके इस लेखन कार्य पर मोरिस मेटर लिंक और बालजाक जैसे फ्रांसीसी साहित्यकारों का प्रभाव है। उन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अपनी संस्कृति और धार्मिक चेतना को आधारशिला बनाया था। लेकिन चलम् ने उन्हें अपने सांस्कृतिक एवं धार्मिक धरातल पर देखकर अपने विचारों को साकार बनाने का सफल प्रयास किया।

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखकर उनका एकांकी 'सत्यवंतुडु' अर्थात् 'सत्यवान' पर विचार करेंगे। इसकी कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। हम सब जानते हैं कि हिन्दू संस्कृति के अंतर्गत एक महान पतिव्रता मानी जानेवाली सावित्री यमधर्मराज से लड़कर अपने मृत पति को फिर से जीवित बना लेती है। प्रचुरित कथा में सावित्री सत्यवान से विवाह करने के लिए अपने पिता से तर्क सकती है। उसके पिता यह जानते हुए कि सत्यवान अर्धायुष्क है, अपनी बेटी सावित्री का विवाह उससे करना नहीं चाहता। फिर भी सत्यवान के प्रति प्रेमपूर्ण मोह के कारण जिद करके उससे शादी कर लेती है। उसकी आयु समाप्त होने पर यमराज प्रत्यक्ष होता है तो सावित्री उससे संघर्ष करके अपने अंधे सास-ससुर के लिए आंखें, उनके लिए और ज्यादा संतान के साथ-साथ अपने पति के प्राण भी वापस ले आती है।

चलम के प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु यहां से शुरू होती है। वयोवृद्ध दंपति सावित्री और सत्यवान अपनी बेटियों के बारे में चर्चा करते हैं। सावित्री क्रोध में अपने पति से कहती है कि उनकी बेटी अनुसूया पुरूरवा से प्रेम विवाह करना चाहती है। पुरूरवा के स्त्री लोलुप होने के कारण उसके साथ अनसूया का विवाह करना सावित्री को अच्छा नहीं लगता। जब सत्यवान कहता है कि सावित्री ने भी प्रेम विवाह किया था, यह जानते हुए कि सत्यवान अर्धायुष्क है तो सावित्री कहती है कि मैं पतिव्रता हूँ। मैं यमधर्मराज से संघर्ष करके आपके प्राण लौट लाई तो सत्यवान कहता है, 'ऐसा करके तुमने कौन-सा बड़ा काम कर दिया? आंखें पाकर मेरे माता-पिता दुखी हैं, क्योंकि उन्हें इस पाप भरी दुनिया को देखना पड़ रहा है और ज्यादा संतान पा तो लिया था। लेकिन उनका भरण पोषण कैसे कर पा रहे हैं वह तुम ही जानती हो। जहां तक मेरा सवाल है, मृत्यु के बाद फिर से जीवन पाकर मैं खुश हूँ। मरने के बाद मैं स्वर्ग लोक में पहुंचने ही वाला था। तुम यमराज से लड़-झगड़कर मुझे फिर से इस धरती पर

ले आई। तुम्हें क्या पता, आखिर मेरे इस शरीर में यमराज ने मेरी ही आत्मा को डाला था। तुमने तो मेरे शरीर से प्रेम किया था और तुम्हें मालूम ही नहीं, इस शरीर में कौन सी आत्मा है?

इतने में उनकी विधवा पुत्री प्रियंवदा वहां आती है और उन्हें बताती है कि वह किसी से पुनर्विवाह करना चाहती है। उस पर सावित्री आगववूला होकर गरज पड़ती है और कहती है कि विधवा होकर भी पुनर्विवाह करना चाहती हो? इस पर सत्यवान कहता है, 'तुमने भी तो पुनर्विवाह किया था। जैसे जब मेरी मृत्यु हुई, तुम विधवा हो गई। लेकिन मेरे जीवित होने के पश्चात् फिर से तुमने मेरे साथ परिवार बसा लिया था। यदि तुम्हारे लिए यह न्याय है तो प्रियंवदा के लिए न्याय क्यों नहीं है?'

चलम् जी इस एकांकी से हमें कुछ विशेष बातें स्पष्ट होती हैं। हम इस नतीजे पर आसानी से पहुंच सकते हैं कि प्रेम विवाह और पुनर्विवाह वर्तमान युग की देन मात्र नहीं है बल्कि वे तर्क के आधार पर भी खरे उतरते हैं। यदि हम सावित्री को पतिव्रता मानते हैं तो इस एकांकी में सत्यवान के वचनों के अनुसार अनसूया और प्रियंवदा के क्रमशः प्रेम विवाह और पुनर्विवाह संबंधी प्रस्ताव अनुचित नहीं होंगे। भारतीय आलोचना के क्षेत्र में पौराणिक आख्यानों को आधार बनाकर उपर्युक्त एवं तर्कसंगत जीवन मूल्यों को स्थापित करने का जो प्रयास हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हजारी प्रसाद द्विवेदी से लेकर नरेन्द्र कोहली, मनु शर्मा, भगवती शरण मिश्र जैसे कथाकारों ने किया वही कुछ ज्यादा तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से तेलुगु के श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम ने बड़े ही प्रभावी ढंग से किया और यह साबित भी किया कि प्रेम विवाह और पुनर्विवाह किसी भी युग में स्वीकार किए जा सकते हैं।

'भक्त कुचेल' श्री चलम् का एक अन्य एकांकी है जिसमें कृष्ण और सुदामा की कहानी के आधार पर परिवार नियोजन और जनसंख्या के नियंत्रण के महत्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया। एस एकांकी में जब सुदामा कृष्ण के पास एक अत्यंत दीन हीन स्थिति में उपस्थित होते हैं और उनसे कुछ आर्थिक सहायता की अपेक्षा करते हुए दिखाई पड़ते हैं तो कृष्ण उसे समझाते हैं, 'देखो सुदामा! तुम्हारे सत्ताईस बच्चे हैं। तुमने तो जीविकोपार्जन का कोई सही मार्ग ही नहीं अपनाया। निर्धनता की इस हीन स्थिति में भी तुमने अपने आप पर नियंत्रण नहीं किया। गलती तुमने की तो सजा तुम ही को भोगनी पड़ेगी। मैं क्यों तुम्हारी सहायता करूं। मेरी आठ-आठ पत्नियाँ हैं। लेकिन मुझे भी इतने बच्चे नहीं है। तुम्हें तो एक ही पत्नी है। इतने सारे बच्चों को पैदा करने में उसने कितनी पीड़ा का अनुभव किया होगा। क्यों तुमने कभी इस पर विचार किया? तुम एक काम करो। मुझे वादा करो कि तुम अपनी पत्नी को शांति और विश्राम दोगे। तब मैं तुम्हें संपत्ति देने के बारे में सोचूंगा। यदि मैं ऐसा नहीं करता तो तुम मेरी सहायता पाकर भी बच्चे पैदा करते रहोगे और उस साध्वी को कष्ट देते रहोगे।' करीबन सत्तर साल पहले लिखे गए इस एकांकी में चलम् जी ने भारत की बढ़ती हुई आबादी को नियंत्रित करने के लिए एक अच्छे माध्यम के रूप में कृष्ण और सुदामा की इस मिथकीय कथा को चुना था।

इन दोनों एकांकियों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि आधुनिक युग में चलम् ने बहुत पहले ही मिथकीय कथावस्तु को यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में चुना था। उन्होंने मिथकीय पात्रों को परंपरा से जुड़े हुए मनुष्य एवं समाज की सच्ची समस्याओं के समाधान के रूप में चुना था। पाश्चात्य आलोचक आई ए रिचर्ड्स के अनुसार मिथक केवल कल्पना नहीं है। लेकिन यथार्थता से परिपुष्ट होकर समस्त मानव सभ्यता के प्रतीकात्मक उद्गार प्रस्तुत करनेवाले अद्भुत उपकरण हैं। ऊपर प्रस्तावित 'सत्यवान' एकांकी में सत्यवान एक तर्कयुक्त आधुनिक पुरुष का प्रतीक है। सावित्री परंपरागत मूल्यों के लिए संघर्ष करनेवाली नारी का प्रतीक है। अनसूया और प्रियंवदा रुढ़िबद्ध आग्रहों के प्रति आक्रोश प्रकट करती हुई उनके विरुद्ध विद्रोह करनेवाली आज की युवतियों

के प्रतीक हैं। भक्त कुचेल एकांकी में श्रीकृष्ण बिना किसी नियंत्रण के आवादी को बढ़ानेवाली निम्नस्तरीय मनोवृत्ति को सही मार्ग पर ले जाने के लिए तर्कयुक्त उपदेश देनेवाले एक स्नेहमय मार्गदर्शक शासक का प्रतीक है। कहने का तात्पर्य यह है कि चलम् जी ने अपने पौराणिक आख्यानों तथा मिथकीय पात्रों के द्वारा समसामयिक समस्याओं और विडंबनाओं को प्रकाश में लाकर उनके लिए उपयुक्त समाधान प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही इन एकांकियों की रचना की और इस प्रयास में उन्हें पूर्ण सफलता मिली, इसमें कोई संदेह नहीं है।

चलम् जी के ऊपर चर्चित दोनों एकांकियों में एक बहुत ही मूल्यवान नारी विमर्श भी मिलता है। 'सत्यवान' नामक एकांकी में सावित्री अपनी दोनों पुत्रियों के विवाह संबंधी प्रस्तावों को स्वीकार नहीं करती। कहा जाता है कि एक नारी ही दूसरी नारी का दुश्मन हुआ करती है। अनुशासन और नियंत्रण के नाम पर आज की माताओं का अपनी पुत्रियों के ऊपर हावी होते रहना एक आम बात हो गई है। लेकिन आज की लड़कियां कुछ कम हैं क्या? वे अपनी माताओं के नियंत्रण में कैसे रह पाती? जब शिक्षित होकर वे एक व्यापक संसार को देख रहे हैं, उन्हें लगता है कि यद्यपि माता-पिता ने उन्हें जन्म दिया हो, फिर भी जीवन तो उनका अपना है। उन्हें अपनी जीवन साथी को चुनने का तो पूरा अधिकार होना चाहिए। माँ और बेटियां तो दोनों नारी हैं। उनके बीच इस तरह का संघर्ष क्या परिवार में मानव संबंधों के लिए घातक सिद्ध नहीं होगा? इसी स्थिति से परिवार को उभारने के लिए एक अत्यंत संतुलित आधुनिक पुरुष के रूप में सत्यवान को सावित्री के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। तर्क कितना ही सही और सामयिक संदर्भों के लिए उपयुक्त लगता है। इसी प्रकार भक्त कुचेल में श्रीकृष्ण द्वारा सत्ताईस बच्चे पैदा करनेवाली सुदामा की पत्नी के प्रति सहानुभूति दिखाया जाना आज के परिवार नियोजन न करनेवाले परिवारों की महिलाओं की दुर्दशा दर्शाती है। एक जमाने में हमारे शासक और राजनीतिक परिवार नियोजन का नारा बुलंद करते विविध माध्यमों में बड़े प्रभावशाली विज्ञापन भी दिया करते थे। जब हमारे नेताओं, राजनीतिज्ञों को मालूम हुआ कि इस नारे से उन्हें कोई वोट नहीं मिलनेवाले हैं तो उन्होंने परिवार नियोजन संबंधी सभी अभियान धीरे धीरे बंद कर दिए। चलम् जी ने शायद उसी जमाने में यह एकांकी लिखा होगा। लेकिन चलम् जी का यह एकांकी पढ़नेवाला कोई भी मध्यवर्गीय अथवा निम्नवर्गीय सहृदय पाठक अवश्य यह अनुभव करेगा कि परिवार नियोजन से देश और समाज का कल्याण होगा और परिवार की महिलाओं का स्वास्थ्य भी सही सलामत रहेगा। संस्कृत की उक्ति 'यत्र नारी पूज्यंते तत्र रमंते देवताः' से परिचित होकर इसे स्वीकार करनेवाला कोई भी व्यक्ति नारी के प्रति सम्मान की भावना दिखाएगा। लेकिन क्या अब हमारे समाज में नारी को यह गौरवपूर्ण स्थान मिल रहा है, यह एक सवाल है। वास्तव में चलम् ने आज की स्त्री को सामाजिक क्षेत्र में उचित स्थान दिलाने के लिए अपनी रचनाओं के द्वारा संघर्ष किया। इस संघर्ष के लिए उन्होंने यदि हमारे पौराणिक आख्यानों और मिथकीय पात्रों का सहारा लिया तो इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि उनके प्रति भारतीय जनमानस में पहले से ही अटूट आस्था विद्यमान है। मिथकीय आधार को लेकर ही कोई साहित्यकार मूल्य स्थापना से संबंधित अपनी बातों को लोगों के अंतः तक आसानी से पहुंचा सकता है।

एक और एकांकी 'नरसिंहावतारम्' में श्री चलम् ने प्रह्लाद और हिरण्यकश्यप नामक दो मिथकीय पात्रों द्वारा आज की प्रशासनिक अव्यवस्था और लोगों की आस्थाओं से संबंधित गलत मूल्यों पर आक्षेप किया गया और यह साबित करने का प्रयास किया गया कि सुख सुविधाओं भरी जिन्दगी की तुलना में मेहनत भरी जिन्दगी व्यतीत कर मनुष्य अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है। नरसिंहावतारम् की कथा तो हम सब को मालूम है। इसे नाट्य रूप देकर पहले वर्ष 1940 में चलम् ने जो एकांकी लिखा उसे वर्ष 1970 में संशोधित करना आवश्यक समझकर उसके चरमांक को थोड़ा-सा परिवर्तित किया।

अब हम उस संशोधित एकांकी की ही चर्चा करेंगे। एकांकी के प्रारंभ में हिरण्यकश्यप और उसके पुत्र प्रह्लाद के बीच वार्तालाप चलता है। प्रह्लाद के सवालों के जवाब देते हुए हिरण्यकश्यप कहता है, 'हां मैं हरि से द्वेष करता हूं, क्योंकि मैं अपनी जनता से प्रेम करता हूँ। तुम कहते हो कि हरि सर्वव्यापी है तो तुम्हें मुझसे दुश्मनी क्यों है? किस नाम से पुकारें और कैसे पूजे तो क्या फर्क पड़नेवाला है। तुममें भी तो वह विद्यमान है, तो वैसे चिल्लाना क्यों? कूदना क्यों? भजन कीर्तन क्यों? प्रार्थनाएं क्यों? यदि तुम चिल्लाते नहीं कि हरि हर जगह पर है, कण-कण में है तो मैं घोषित नहीं करता कि वह नहीं है। वह हो या नहीं हो, मुझे क्या? वह तो उन्हीं लोगों को चोरी-छुपी मारता है जिन्हें वह पसंद नहीं करता। धैर्यवान होता तो दिखाई देता। कायर और डरपोक है। इसीलिए छुपा रहता है। सामने नहीं आता।'

इसके बाद प्रह्लाद के यह कहने पर कि हरि उसे स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है और उसके खुद के हृदय में आसिन है तो हिरण्यकश्यप कहता है, 'तुम तो मेरे बेटे हो गए हो। कोई दूसरा होता तो उसकी छाती चीरकर और उसका हृदय निकालकर पूछता कि दिखाओ भैया, वह कहां है?' जब प्रह्लाद पूछता है कि हरि दर्शन के लिए वह इतना उतावला क्यों हो रहा है तो वह कहता है कि लोक कल्याण के लिए ही वह हरि का वध करना चाहता है। इस बात पर यदि हम ध्यान दें तो हमें मालूम होगा कि श्री चलम् ने प्रचलित मिथकीय आख्यान को प्रयोगात्मक ढंग से प्रस्तुत किया कि हमें सामयिक संदर्भ में साहित्यिक विधा को उपस्थित करने की प्रविधि क्या होती है? जनता का विचार है कि नरसिंहस्वामी ने लोक कल्याण के लिए प्रजाकंटक माने जानेवाले हिरण्यकश्यप का वध किया था। लेकिन इस एकांकी में हिरण्यकश्यप पूरे विश्वास के साथ कह रहा है कि वह श्रीहरि का वध करके लोक कल्याण करेगा। आगे चलकर नरसिंह स्वामी के साथ संपन्न उसके वार्तालाप में यह बात हमें स्पष्ट होती है कि वह श्रीहरि को क्यों मारना चाहता है?

खंभे से निकलकर आराम से चलते हुए आनेवाले नरसिंहस्वामी को देखकर जोर से हंसते हुए हिरण्यकश्यप कहता है, 'तुम कौन हो रे? क्या तुम ही हरि हो? इतनी देर से इस कमरे में कहां छिपे बैठे थे? यह कैसा वेश धारण है? किसी ड्रामा कंपनी से आए हो क्या? बहुरूपिण या कठपुतली की भांति विचित्र लगनेवाले तुम ही हो क्या हरि? तुम्हारे महान् रूप के बारे में तो इन लोगों ने बड़ा वर्णन किया था। तुम्हें देखते हुए बड़ा मजा आ रहा है। ठीक आओ, बैठो। हम लोग बात करेंगे।'

नरसिंहस्वामी चलकर बगल में रखे एक आसन पर बैठ जाता है। हिरण्यकश्यप उससे पूछता है, 'क्या तुझे कुछ खाने-पीने के लिए दिया जाए। लेकिन, अच्छा, इस चेहरे से, इन दांतों की वजह से तुम तो क्या खा सकोगे, क्या पी सकोगे! इसका तो तुम निर्णय ही नहीं ले सकते। कुछ नहीं चाहिए, ठीक है। कोई बात नहीं। अब वोलो कि तुम मेरा वध क्यों करना चाहते हो?' इस पर नरसिंहस्वामी कहता है, 'तुम तो इस संसार पर बड़ा जुल्म कर रहे हो। ये सारे लोक तो मेरे हैं। इनमें हिंसा करनेवालों का वध तो मुझे करना ही पड़ेगा। इतने सालों से मैं तेरे द्वारा ही देवताओं और ऋषियों को सबक सिखा रहा हूँ। तुमने उन देव ब्राह्मणों के प्रति जो व्यवहार किया उससे देवत्व और ब्राह्मणत्व अपमानित हुए। इसलिए तुम वध्य हो।' इस पर हिरण्यकश्यप कहता है, 'यदि ये सारे लोक तुम्हारे हैं तो इन्हें मेरे लिए छोड़कर तुम कहां छिपे थे? इन लोगों ने कहा था कि तुम सर्वज्ञ हो। इस बदमाश ने कहा था कि तुम तो सर्वार्थामी हो लेकिन लगता है कि तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं। देवताओं पर आक्रमण करके उन पर विजय हासिल करना तो हमारी जाति का धर्म है। बिना हिंसा के कोई राजा अपना धर्म कैसे निभाएगा? कुबेर को हराकर उसकी नवनिधियां ले आया और उन्हें जनता में वितरित किया। क्या इसे तुम हिंसा कहते हो? देवता लोग तो जुल्म करते हैं, लोगों में मूर्खता पैदा करके उनके भोलेपन को बढ़ाते हैं, यह विश्वास दिलाते हैं कि वे उन्हें वरदान देंगे। पूजाएं और यज्ञयागादि कराते हैं। ऐसी स्थिति में मैं ने देवताओं के इस अधिकार को छीनकर मेरी पूजा करने का आग्रह किया तो इसमें क्या दोष है? देवता

लोग जनता की सुख-संपत्ति छीनकर सोमपान करते हैं और वेश्याओं के साथ अपना समय बिता रहे थे तो मैं ने उन्हें धरती पर लाकर लोगों को सुख-सुविधाएं देने के लिए वाध्य किया। इसीलिए मैं देव विरोधी कहलाया। मेरे खिलाफ प्रचार किया गया कि मैं नीति, न्याय और धर्म का विरोधी हूँ और इन्हीं बातों को आधार बनाकर मेरे विरुद्ध तुम्हें शिकायतें भी की गई। तुम्हारी असलियत तौ मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसे मैं तुम्हीं को समझाता हूँ, सुनो। लोगों का सुखी जीवन बिताना तुम्हें भाता नहीं। सुख और भोग का लालच दिखाकर इन्हें बीमारियों, दारिद्र्य, ईर्ष्या, द्वेष और भय जैसी भावनाओं द्वारा अनादिकाल से तुम इन्हें जिन्दा ही जलाकर राख कर रहे हो। वह तो तुम्हारी लीला है। लेकिन इनके लिए प्राणांतक सिद्ध होता है। लोगों पर करुणा और सहानुभूति दिखाकर उनकी मदद करने के लिए उद्यत हर किसी को राक्षस का नाम देकर वर्णाश्रमधर्म का विरोध, निरीश्वरवादी कहकर, उसके खिलाफ गलत धारणाएं पैदा करके उसका विनाश कर रहे हो। अब तुम्हारे दाल नहीं गलेंगे। तुम्हारे इस विपरीत व्यवहार को पहचानकर मैं ने उचित सावधानियां बरती। इसलिए मैं अवध्य हूँ।

हिरण्यकश्यप की ये बातें सुनकर नरसिंह उससे सवाल करने लगता है कि यदि देवताओं को पृथ्वी पर ला दोगे तो इस धरती पर वर्षा कैसे होगी? फसलों का क्या होगा? उत्तर में हिरण्यकश्यप कहता है, 'देखो! मेरा वध करना चाहते हो तो करो। लेकिन इस संसार पर शासन करने के लिए मुझसे कुछ सबकें सीखो। देवताओं की, उन सालों की पूजा करके उनसे भीख मांगनी है क्या? अवे! इन्द्र इधर आओ रे! तुम बोले, हम दोनों में तुम्हारा स्वामी कौन है? क्यों, चुप क्यों हो? मुंह लटकाकर क्या देख रहे हो? कोई जवाब क्यों नहीं देते? इतने भयभीत क्यों हो? देखो हरि। ये है तुम्हारा त्रिलोकाधिपति। अब वर्षा कहां होनी है, कब होनी है, कितनी होनी है वहां उसी समय में उतनी ही हो रही है। आप लोग तो बिना वर्षा के किसानों को रूला-रूलाकर मारते थे। बाढ़ों के कारण गांव-कस्बे ढह जाते थे। कैसी सरकार है वे कह? शर्म नहीं आती। लूओं, तूफानों, सुनामियों-बेचारी गरीब जनता एक नहीं, इतने सारे कष्ट सहती केवल आप लोगों की वजह से। तुम तो इस संसार को इन लोगों के हाथ में देकर बड़े चैन से सो रहे हो। कैसी सरकार है वे यह? बीमारियों को लात मारकर पाताल में बांध दिया मैं ने। मौत के सिवा और कोई चिन्ता या तकलीफ नहीं है मेरी जनता के लिए। हाँ! मृत्यु को तो मैं ने इसलिए छोड़ दिया कि लोग आराम से चैन की जिन्दगी जिएं, सुख और संतुष्टि के साथ पले-बढ़े और उसके बाद पककर बदलाव की इच्छा ने खुशी से मौत को स्वीकारें। क्या तुम जानते हो कि मैं ने इतना तप करके ये वर क्यों पाए? यह सारी संपत्ति अपने सिर पर लादकर ले जाने के लिए नहीं, केवल इस जनता के लिए। बीमारियों, बाढ़ों, अकालों, पूजाओं, शास्त्रों, गलत नीतियों और दरिद्रता से खिन्न एवं दिशाहीन होकर मृत्युलोक जानेवाली इस प्रजा का क्षुब्ध बनानेवाले तुम लोगों का विनाश करके एक सुखप्रद एवं सुविधापूर्ण शासन इन्हें देने के लिए। देखो, तुम तो बुद्धिमान लगते हो। मेरी बात सुनो। इतने दुखों, ईर्ष्याओं, बाधाओं, चिन्ताओं, युद्धों के बिना इस संसार पर शासन करना तुम्हें नहीं आता। यह सब मुझ पर छोड़ दो। अब आखिर मेरा वध तुम क्यों करोगे? मेरी जनता को कौन बरवाद करेगा? तुम करोगे?" हिरण्यकश्यप की इन बातों से स्पष्ट होता है कि देवी लीला के नाम पर एक अव्यवस्था और लोगों का विनाश ही संभव हो रहा है। उनमें भगवान के प्रति एक गलत आस्था पैदा करके उन्हें मूर्ख बनाकर व्यर्थ की पूजाओं में अपने समय और धन दोनों को बरवाद किया जा रहा है।

आगे नरसिंहस्वामी कहता है, 'तेरी जनता का विनाश मैं क्यों करूंगा? इतना परिश्रम करने की मुझे जरूरत ही नहीं है। वे लोग तो खुद अपना विनाश करेंगे। अभी तो तुम्हारे भय के कारण रुके हुए हैं। यदि तुम मौत के घाट उतार दिए जाते तो ये लोग एक दूसरे को छुरियां भोंककर मर जाएंगे। तुम तो जानते ही हो कि मानव का क्या स्वभाव है। जिस थाली में खाते हैं उसीमें छेद करते हैं। अब तक उन पर शासन किया तुम्हारे ऊपर उनके भय ने। तुम्हारे प्रति प्रेम ने नहीं। ऐसा इसलिए कि मनुष्य के लिए आत्मा है। वह सुख और चैन नहीं चाहती। वह सफलता चाहती है और मैं ही वह सफलता हूँ।

मुझे पाए बिना किसी भी प्राणी को शांति नहीं है। सर्वशक्ति संपन्न एवं सुख संपत्ति युक्त सम्राट हिरण्यकक्षप के लिए एक पल भी शांति नहीं। जीवन भर मेरी तलाश करते रहे।’

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री चलम् ने अपने इस एकांकी में मानवमात्र को एक अत्यंत प्रचलित मिथकीय कथा के द्वारा यह समझाने का प्रयास किया है कि वह आज जिन समस्याओं और विडंबनाओं का सामना कर रहा है, उसका कारण खुद नहीं है। एक तरफ परस्पर वैमनस्य के कारण एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने की एक बहुत ही भयानक प्रवृत्ति पराकाष्ठा तक पहुंच रही है तो दूसरी तरफ अपनी मूर्खता और अपने भोलेपन के कारण भक्ति के नाम पर अंध विश्वासों को महत्व देते हुए अपने जीवन को विनाश की तरफ ले जानेवाला आज का मनुष्य यदि चलम् के इस एकांकी को पढ़ेगा तो उसे स्पष्ट मालूम हो जाएगा कि वह स्वयं अपने विनाश का निर्माण कर रहा है, सुखों और सुविधाओं के नाम पर इस समूची प्रकृति को बरबाद कर लेने पर तुला हुआ है और प्रलय के आमंत्रण में अपनी सर्वोच्च योगदान दे रहा है। मिथकीय आख्यान के आधार पर विरचित इस एकांकी का जितना ज्यादा प्रचार-प्रसार होगा, मानव जाति का उतना ही कल्याण संभव हो पाएगा।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तेलुगु के प्रसिद्ध साहित्यकार गुडिपाटि वेंकटाचलम ने ऊपर चर्चित तीनों एकांकियों में समसामयिक स्थितियों के लिए आवश्यक आदर्श मूल्यों की स्थापना के लिए मिथकीय संदर्भों को आधार बनाकर बड़ी ही सफलता पाई। पाश्चात्य आलोचक के सिर के अनुसार मिथक तर्कशक्ति के आविर्भाव पूर्ववर्ती मानव अनुभवों का अभिलेख है। चलम् जी ने अपने उपर्युक्त एकांकियों में इसी अभिलेख से दो पन्ने निकालकर उन्हें सजाने और संवारने का सफल प्रयास किया। वर्तमान संदर्भ के अनुसार उन्हें एक उपयुक्त रूप प्रदान करने में भी सफलता पाई। सत्यवान और श्रीकृष्ण दोनों पात्रों को आधुनिक युग के लौकिक आदर्शों के प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत करके चलम् जी ने यह साबित किया कि मिथकीय संदर्भों को भी नए तरीके से समझने-समझाने का प्रयास किया जा सकता है।

इस संदर्भ में हम यह भी देखते हैं कि चलम् जी के उपर्युक्त एकांकियों में सत्यवान और कृष्ण के वचन इस युग की जरूरतों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। इसलिए इनमें विश्वसनीयता के लिए अलग से ढूँढ़ने की आवश्यकता ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि हम प्रत्यक्ष रूप से जिन बातों को समझने का प्रयास करते हैं उन्हीं को मिथकीय माध्यम से श्री चलम् जी ने बड़े प्रभावी ढंग से इन एकांकियों के द्वारा प्रस्तुत किया है। कहा जाता है कि प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथक साहित्य में सुरक्षित रहती है। इस प्रकार सत्यवान और कृष्ण जैसे अनेक मिथकीय पात्रों द्वारा हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने का हमारे पूर्वजों द्वारा अत्यंत सफल प्रयास किया गया। लेकिन आधुनिक काल में जब हमारी इस प्राचीन भारतीय संस्कृति के आदर्श परिवर्तित होते दिखाई देते हैं तो यदि इसे एक आधुनिक भारतीय संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठापित किया जाए तो कितना अच्छा होगा और इस आशय के लिए मिथकीय पात्रों को और मिथकीय घटनाओं के आधार पर प्रयास किया जाना आगे की पीढ़ियों के लिए कितना आवश्यक होगा। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्री चलम् ने अपने इन एकांकियों में जो तर्कयुक्त प्रयास किया वह नितांत प्रशंसनीय है। यदि मिथक संबंधी आधुनिक भारतीय अवधारणा के अनुसार वह ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सत्य का पूरक है तो हमें यह मानना ही होगा कि इन एकांकियों में श्री चलम् ने पूरण का वह कार्य अत्यंत कुशलता से किया।

....

*संपर्क-सूत्र :- डोर नं.4-62-19, फ्लैट नं-201, श्री वेंकट सौशील्यम अपार्टमेंट्स,
लाॅसन्स वे कोलोनी, पोस्ट ऑफिस के पास, विशाखपट्टणम-530017.*

मो:8885990777

मीना खोंड की दो कविताएँ

बुढिया का घर

हमेशा आते ये लोग
वृद्धाश्रम में वृद्धों को मिलने
ब्रेड, बिस्किट, लड्डु कपडे लेकर
ढेर सारी खुशियाँ
अपने साथ समेट कर! ...

क्या भावना होगी उनके दिल में?
लावारिस समझते हैं?
गलत तो नहीं!
यहाँ लावारिस नहीं, अनाथ नहीं
अकेले हैं, बेघर हैं!

इन लोगों को देखकर
मन में आशा जागती है।
कोई तो हमें घर ले जाये।
घर, परिवार, अपनापन, सहारा
हमें मिल जाये।

बुढिया ने एक शक्स से पूछा
'बेटा माँ है?'
उसने कहा हाँ, है!
यहीं वृद्धाश्रम में है!
उसीसे मिलने आया हूँ!

फिर दूसरे आदमी से पूछा
'तुझे माँ है बेटा?'
'नहीं! दो साल पहले गुजर गयी!
उसके जाने से झंझट ही
खत्म हो गयी!'

कहाँ गयी इन्सानियत?
कहाँ गया माँ-बाप के प्रति प्यार!
माँ-बाप को वृद्धाश्रम में रखकर
गैर-जिम्मेदारी का अच्छा फर्ज निभाते
माँ-बाप से उन्नत हो जाते!

बुढापा क्या शाप है?
बुढापा बोझ होता है?
कोई अपना क्यों नहीं कहते?
घर, अपनापन क्यों नहीं देते
क्यों घर-परिवार से बाहर कर देते?

अब तो भगवान का घर अपना है।
सोछ-सोच कर, थक कर
बुढिया सो गयी।
सुबह सुबह लोग कह रहे थे
बुढिया भगवान के घर गयी।
...

दीवारे....!

मेरे बाप...!
कितनी ऊँची ऊँची दीवारे...!
आदमी आदमी में...!
जाति जाति में...!
धर्म धर्म में....!
इंसानियत शायद दफन हो गयी
ये भेदाभेद के दीवारों के नीचे...!
पूरी दब गयी मिट्टी में...!
क्या फिर से उगेगी इंसानियत?

कुमार लव की कविताएँ

अन्नदाता

जो चाहा
वह नहीं मिला,
ठीक हैं।

जो करना चाहा
उसका मौका नहीं मिला,
हम्म...

तो क्या?

जो मिला
उसका क्या किया?

क्यों वश में हो,
किसी और के?

शांत चीखें?
बड़बड़ाती नींदें?
दुःस्वप्न...

हाथ-पाँव सीधे कर
मुठ्ठियाँ खोल,
क्यों चीर नहीं देती
यह गर्भ?
...
देखो गौर से
खोखला-सा यह घर।

सबकी सुरक्षा के लिए बना
यह पिंजरा-
तुम बाहर तो हो ना?
सब सुरक्षित हैं,
और क्या चाहिए?
यह बचपना क्यों?
थक गया हूँ-
बाढ़ को रोके-रोके,
अब रोक नहीं रहा,
पर
बाढ़ भी थक गई लगती है।
स्वीकार।
हर संस्कार,
स्वीकार,

सत्य...
...

अल्पविराम

कई साल पहले
तोड़ दिया था मैंने
वह गुलदान जो तुमने दिया था।

आज वह दिखा मुझे
उसी पुराने घर में।
मैंने उठा लिया उसे
पर एक बच्चे ने
छीन लिया मेरे हाथ से
कहते हुए-

यह उसका घर हैं,
और मैं एक घुसपैठिया।
हाथ फैलाए, उसे लेने के लिए
मैं नींद से जाग गया।

इस सपने ने
सिखा दिया मुझे
कुछ भी कभी नष्ट नहीं होता,
बस रूप बदल लेता हैं,
गुलदान की तरह,
सपने की तरह।

...

अलगाव

सपना
एक ऐसे घर का
जहाँ केवल वे आएँ
जिन्हें मैं बुलाऊँ,
बड़ा, चोटी पर
और मेरा।

पूरा हो ही जाता हैं
यह सपना,
जिसने भी देखा
पा लिया।

और फिर
जुड़ने की कोशिश में
तोड़ दिया वह मकान
अपने ही सपनों का।

...

संपर्क-सूत्र :- 208 ए, सिद्धार्थ अपार्टमेंट, गणेश नगर, रामतपुर, हैदराबाद-500013.
मो:08121435033.

मील का पत्थर

- भगवतीलाल सोनी

मैं जड़वत होकर भी,
इंगित करता हूँ, दूरियाँ ।
कौन समझ सका है? आजतक,
मेरी मजबूरियाँ ।
मेरी छाती को कुरेद करके,
खोदी गयी इबारत,
बतलाती है दूरियाँ ।
किन्तु यहाँ तो अलग - अलग ढपलियाँ हैं ।
अलग - अलग राग हैं ।
कैसे बतलाऊँ मैं
अलग - अलग मंजिलें
और अलग - अलग मुकाम
न कोई नमन ।
न कोई सलाम ।
अपूज्य, अविचल और अड़िग हूँ, मैं ।
चढ़ती रहती है मुझ पर धूल ।
गिरता है, मुझ पर बरसाती पानी ।
सहता हूँ, चिलचिलाती धूप ।
ओ - देवालयों में शोभित
इठला - इठला कर जमें हुए पाषाण खण्डों ।
मेरी पीड़ा किसने पहचानी ?
मेरा दर्द किसने बाँटा है ?
मैं तुम्हारा ही सहोदर भाई हूँ ।
मैं मील का पत्थर हूँ ?

...

संपर्क-सूत्र :- बी-115, दीनदयाल नगर, रतलाम-457001 (म.प्र.) मो:7067502035

विवशता

- भगवतीलाल सोनी

घड़ी की सुई की तरह
काल चक्र घुमाता है ।
और मैं घूमता ही रहता हूँ ।
कब तक ?
मैं नहीं हूँ विकलांग
तो बैसाखी टेक कर चलने की क्या जरूरत है ?
पिंजरे के पंछी की तो विवशता है,
बली के बकरों की भी है
कोठे की थिरकन भी
यही कहती है ।
जन्म और मृत्यु के बीच जो विवशता है ।
क्या, उसी का नाम जीवन है ?
खोज है,
उस स्वतंत्रता की,
जो उड़ते पंछी को प्राप्त है ।
उस क्षण की
जब बंद घड़ी की सुई भी ।
बारह घंटे में एक बार सही समय बतलाकर
काल चक्र को चुनौती दे
बैसाखी गिर जाये
हवा का रूख बदल जाय
जीवन के शब्द कोश से
“विवशता” शब्द निकल जाय।

...

संपर्क-सूत्र :- बी-115, दीनदयाल नगर, रतलाम-457001 (म.प्र.) मो:7067502035

देह एक-मृत्यु अनेक

तेलुगु मूल : रामा चन्द्रमौलि
अनुवाद : डॉ.कोम्मिशेट्टि मोहन

क्या बेहोश हो जाने का मतलब मर जाना ही है?
वैसे वो जन्म लेने पर होश नहीं था न!
मरते समय भी होश नहीं होता
जीते हुए इस थोड़े से समय में तो सही क्या हमें होश है?
एक बचपन...एक कौमार...एक सपने के समूह से
दौड़ दौड़ कर
धड़ाल से गगन के अन्तराल में उड़ा हूँ न
तभी दौड़ में विवेचन, समझदारी, आत्मा सब फ़िसल गये
सच कहूँ तो मैं नंगा हो गया
रेतीले घरोंदों में पैर
पैर पर बने रेतीले घरोंदों पर दो आच्छादित हाथ
पैर के हटाने से क्या घरोंदा गिर जाएगा
या घरोंदे के लिए पैर बिना हिलाये शिला बन जाऊँ?
सामने सागर की लगातार गर्जन
पढ़ो...पढ़ो... कमाओ....कमाओ
रातों रात ढेर सारी पुस्तकों में फैल कर
जम्हाते सबेरे...लाल जलती सी आँखें फूल कर
विश्व विद्यालयों की सारी दीवारें
ज्ञान सिद्धांत के प्रवचन बन ऋषियों जैसे खड़े होकर
कसती मुट्ठियाँ, शीशे के टुकड़ों पर चलने के पाँव
झुके सिर से
पृथ्वी को चीरते हुए चित्र खींचती निगाहों से
आधी रातें....एक मौन....अकेली चाल
होश चाहिए....
आदमी को कम से कम...अपने का तो होश चाहिए
अपने आप को जान लें, तो एक आशा कि
बगल का आदमी भी समझ में आ जायेगा।

(2)

समझौता करना सीख लिया है न
उस दिन...तुम से उपदेश पाया दिन
शादी कर सुहाग रात में जिस दिन तुझ से बतियाया था
जिस दिन नौकरी में भर्ती हुआ था
जिस दिन पहली बार रिश्वत ली थी
उसके पश्चात....अनिवार्य हो, जिस दिन उसको रिश्वत दी थी
उसी दिन मर गया था न ...
अपने हर नीच कार्य पर 'लाजिक' का सहारा, जिस दिन
रिश्वत उसने ली थी, इसलिए मैं ने दी थी
रिश्वत उसने दी थी, इसलिए मैं ने ली थी
अरे, यह तो कुत्ते की खींचातानी है...अंतहीन हनुमान की पूँछ
क्या नौकरी के अधिकार की मस्ती में इतना नशा होता है।
अफ़सर के आते देख उठ खड़े होकर...झुक कर सलाम कर
दरवाजा खोल, जूते साफ़ करके
मर गया था रे...अहंकार की चादर के नीचे
बर्फ के टुकड़े, मिट्टी की ढेरें, आग के पत्थर
ढ़ह ढह कर, सिर पर छा छाकर
जूतों के नीचे बीखहूटी
लाल खून...कलेजे में घुसती आग की कील
क्यों रे यह समझौता...क्यों रे यह नाक की बोली...हुकलापन
क्यों रे यह हाथ मलना
क्यों रे यह सिर झुकाना...सिर नीचा करना
समझौते का मतलब
क्या आहिस्ते आहिस्ते मृत्यु को स्वीकार करना ही है?

(3)

जीत-हार के बारे में हीं न, हम बतिया रहे थे
एक बार हार जाना
कुछ बार जीत कर भी हारना
माँ री...

जीने का मतलब...हवा लहर सी चलती जैसी
यों ही झरना झरता सा
एक पक्षी आसमान में उड़ता सा
आधी रात को कली मौन ही फूल बन विकसित होता सा
कोहरे में से कोई आकर
उसी कोहरे में कोई कहीं चले जाता सा...
तुमने जिसकी याद दिलायी थी
एक घाव फूट निकले खून सा दिल भर फैले समय
कितना पाया था ... कितना खोया था
क्या हैं और क्या नहीं हैं?
जो भी हैं तो क्यों हैं ...
जो रहने चाहिए ... वे क्यों नहीं हैं?
0-15 के स्कोर से हार ... जीत
15-14 के स्कोर से ... जीत ... हार
क्या ये दोनों एक ही हैं?
खाली गिलास उलटा किये जाते समय
समझ में आ रहा है, वैसे तो
मुझे क्या चाहिए, मुझे तो पता न चला
कम से कम
मुझे जो नहीं चाहिए, उसका भी पता नहीं चला न...!

...

संपर्क-सूत्र :- 24/327-4, अमृता गार्डन्स, पावर हाऊज स्ट्रीट, प्रोद्दूर-516360,
कडपा(जिला), आं.प्र. मो: 9100155308.
मूल कवि :- 11-24-498, टेलीफोन भवन लेन, पौचम्मा मैदान, वरंगल-506002
तेलंगाना। मो:9390109993

◆ गीत

अरुणा दुबलिश के दो गीत

(1)

करवटों में बसी
नींद उड़ने लगी
चाहतों ने बसेरा पलक में किया।

मैंने ढूँढी मगर
न मिली कोई डगर
चाँदनी की गली में गज़ब हो गया

धड़कनों में बँधा
मन चिरकने लगा
साँस के द्वार पर दल बदल हो गया।

पाँव थकने लगे
भाव थमने लगे
टिमटिमाता हुआ स्वर दमक सा गया।

...

(2)

बादलों की ओढ़ चादर
सो गया आकाश
शाख के पत्ते डुलातीं
बूँदें बरसीं बेहिसाब।

रात सिरहाने खड़ी
सो गई चुपचाप
चाँद की पलकें झुकातीं
किरणें बरसीं बेहिसाब।

कच्चे घरों में धूप ने
दामन पसारा भोर में
ठंड से राहत दिलाती
धूप बरसी बेहिसाब।

...

...

संपर्क-सूत्र : 371/6 प्रगति नगर, मेरठ-250 001. मो:9219702074

“पुरानी दोस्ती”

- देवेन्द्र कुमार मिश्रा

मैं दलित था वो वामन। हम दोनों अच्छे दोस्त थे। एक समय था जब मैं उसका सम्मान करता था। वह मेरे घर आता तो मुझे अच्छा लगता। मैं स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता। मुझे लगता था कि उसे नहीं मालूम कि मैं दलित हूँ। उसे जाति, राजनीति की बहुत जानकारी नहीं थी। वह था भी शुद्ध, शाकाहारी ब्राह्मण। एक बार मैंने उसे बताया भी अपनी जाति के बारे में। उसने कहा - “मैं ये सब नहीं मानता” मुझे अच्छा लगा कि दुनियाँ में बदलाव आ रहा है। अब पहले जैसा माहौल नहीं रहा। वह मेरे घर आता, चाय पीता। नाश्ता करता। कभी-कभी भोजन भी करता। मेरी माँ को मेरी तरह आई कहता। उस समय जो मैंने कहा उससे। जो मुझे अब लगता है कि नहीं कहना चाहिए था। एक दोस्त खो दिया। उस समय लगा था कि सही किया। ये तो पता था कि हमारे समाज के पिछड़े और शोषित होने में ब्राह्मणों का बड़ा योगदान है। और ये योगदान भी मेरे मित्र या परिचित सवर्ण मित्रों का नहीं है। उनके पूर्वजों का है। तो इसमें आज के इन सवर्णों खासकर ब्राह्मणों का क्या दोष?

उस समय हम सब पढ़-लिखकर नौकरी तलाश रहे थे। एक बार मैं अपने मित्र के सवर्ण मित्रों के साथ था। उन्होंने आरक्षण को कोसा। मेरे वामन मित्र ने उन्हें इशारे से रोका। लेकिन मुझे बहुत बुरा लगा। फिर मेरी नौकरी का संघर्ष खत्म हो गया। मेरी नौकरी लग गई। लेकिन मिलना-जुलना पहले की तरह था। अखबारों, समाचार चैनलों में कभी-कभी सुनता, पढ़ता कि दलित महिला के साथ बलात्कार, तो खून खौल जाता। लगता कि अभी भी कुछ बदला नहीं है खासकर गांवों में। एक बार जब मैंने उससे कहा था कि मैं दलित हूँ तो उसने पूछा था। क्या हो चमार, मैहतर, भंगी। हो तो हो, पहले हम दोस्त है। मैंने कहा - “नहीं, महार हूँ।”

“महार मतलब?” “उससे भी नीचे” वह हिन्दी क्षेत्र का व्यक्ति था। नागपुर में चार-पाँच साल पहले ही आया था। महाराष्ट्र क्षेत्र में महार जाति के लोग ज्यादा हैं।

मैं भी पहले कट्टर नहीं था। लेकिन नौकरी लगने के बाद हमारा अँजाक्स का संगठन बना था। जिससे मुझे जोड़ लिया गया था या जुड़ना पड़ा था। मुझे अक्सर अजाँक्स सभा की मीटिंगों में बुलाया जाता। जाति उद्धार की बातें की जाती। सामने अम्बेडकर की तस्वीर रखी जाती। वही एक सी तस्वीर। नीले रंग के सूट में अम्बेडकर। फिर हमारे कुछ नेताओं ने अम्बेडकर की राह पर चलते हुए बौद्ध धर्म स्वीकारा। फिर उन्होंने बाकी सभी दलितों खासकर महार जाति के लोगों को बौद्ध धर्म स्वीकारने के लिए कहा। जिससे हम अपने हक, अधिकारों की लड़ाई लड़ सके। इस सबके लिए मीटिंग हो, सभा हो। अम्बेडकर जयंती हो या बौद्ध धर्म का कोई कार्यक्रम। हमारे दलित नेता भर-भर के ब्राह्मणों को कोसते। अपने बर्बादी, दुर्दशा का कारण ब्राह्मणों को बताते। ब्राह्मणों के अत्याचारों के ऐसे-ऐसे किस्से, जो सच्चे थे, सुनाते कि हमारा खून खौल उठता। हिन्दू धर्म के विषय में उनकी देवी-देवताओं के विषय में ऐसी बातें होती कि यही बात यदि कोई मुसलमान कहता तो

दंगे-फसाद हो जाते हमारे नेता हमें संगठित रहने की बात करते। बौद्ध धर्म उन्होंने स्वीकार तो कर लिया था लेकिन कोई विशेष रुचि या जानकारी बुद्ध के विषय में नहीं थी चूंकि हिन्दू नहीं रहना था सो बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। ग्रहण इसलिए किया क्योंकि बाबा साहेब अम्बेडकर ने किया था। हम स्वयं को बुद्ध से ज्यादा अम्बेडकर के करीब मानते। लेकिन हमें भी एक ईश्वर की जरूरत थी धार्मिक रूप से तो हमने बुद्ध को अपना भगवान माना। हमें बौद्ध धर्म ग्रहण करते समय एक गोल लकैट दिया जाता। जिसमें एक तरफ बुद्ध का चित्र था दूसरी तरफ अम्बेडकर का। अब यही हमारे भगवान थे। धीरे-धीरे घर से सारे हिन्दू देवी-देवताओं को हटा दिया गया हमारे घरों से। हमारे विवाह बौद्ध धर्म के रीतिरिवाजों के अनुसार होते थे। न कि हिन्दू धर्म के पंचांगों के हिसाब से।

जब मनु स्मृति की बात हमारे नेता सुनाते कि वेद सुनने पर शूद्रों के कानों में पिघला शीशा डालने का उल्लेख है। तो मनु से घृणा होने लगी। मनु हमारा सबसे बड़ा शत्रु था। जब शम्बूक वध के बारे में सुनाया जाता तब राम हमारे लिए खलनायक की भूमिका में थे। जब ढोल-गंवार-शूद्र-पशु-नारी के दोहे को पढ़कर हमें सत्य से अवगत कराकर हममें रोष भर जाता तो हमारे विचार कट्टर ब्राह्मण विरोधी होने लगे। मैं भी ब्राह्मण विरोधियों में शामिल हो गया।

मेरे उस ब्राह्मण दोस्त जो कि आर्थिक रूप से निर्बल था। मेरे सामने वही था अपना गुस्सा उतारने के लिए। और मेरे ही घर बैठा था। मैंने अम्बेडकर के प्रसंग को निकालते हुए उन्हें अपनी जाति का उद्धारक कहा। उसने माना। फिर मैंने अपनी जाति के शोषण के लिए ब्राह्मणों को दोषी ठहराया। उसने माना। फिर अचानक से मेरे मुँह से ब्राह्मणों के लिए गालियाँ निकलने लगी और मैंने कह दिया कि तुम भी तो उन्हीं के वंशज हो। हमारे साथ हुए अत्याचार के बराबर दोषी।”

“मैंने क्या किया?” उसने मासूमियत से कहा।

“तुम्हारे पूर्वजों ने तो किया।” मैं क्रोध से कहा।

“तुम बौद्ध धर्म ग्रहण कर चुके हो तो तुममें करुणा का भाव उत्पन्न होना चाहिए। लेकिन तुम बौद्ध नहीं अम्बेडकरपंथी बनकर रह गये हो। फिर तुममें और चरमपंथियों में क्या अन्तर रहा। तुम जब-जब अम्बेडकर वादियों की सभाओं से आते हो तब-तब तुम्हारी विचारधारा बहुत कट्टर हो जाती है।” उसके कहने पर मैं क्रोध से भर उठा। “यदि तुम सच्चाई से मुँह चुराना चाहते हो तो चुराओ जो सच है वो सच है।”

वह भी कुछ गुस्से में आ गया। उसने स्वयं को अपमानित महसूस किया। उसने भी गुस्से में कहा - “आरक्षण के दम पर सरकारी नौकरी में घुसकर हमारे हक पर डाका डालने वालों। 60 साल से आरक्षण चल रहा है तब भी तुम्हारे साथ इंसाफ नहीं हुआ। अम्बेडकर होते तो खत्म कर चुके होते आरक्षण। उन्होंने कुछ वर्षों के लिए लागू किया था। वोटबैंक के चलते सरकारें इसे बढ़ाती गई। मेरी बेरोजगारी के जिम्मेदार तुम हो। तुम्हारे लोग हैं। मैंने कभी दोस्ती के बीच जाति नहीं आने दी लेकिन तुम लेकर आये।”

वह उठा और गुस्से में चला गया। उसे अपमानित करके मुझे लगा मैंने अपनी पूरी जाति के अपमान का बदला ले लिया हो। मुझे उसे वामन दोस्त से दूर होने की कोई परवाह, चिन्ता नहीं थी। चुनाव के समय मायावती, कांशीराम के सवर्ण विरोधी नारों से हम स्वयं को गौरान्वित महसूस करने लगे। हमने अपना धर्म बदला लेकिन जाति से जुड़े रहे। अपने एक दलित नेता से पूछा भी मैंने कि जब धर्म बदल दिया तो जाति का तमगा लेकर क्यों घूमे?”

उन्होंने कहा - “जाति नहीं जाती कभी। जाति गई तो आरक्षण भी गया। दुबारा ऐसी बेवकूफी भरी बात मत करना।” फिर वापिसी पर नमस्ते की तो हमें कहा गया कि अब जय राम बोलना छोड़ो। और आज से मिलते समय हम सब एकदूसरे से जय भीम बोलेंगे। मेरा वामन दोस्त तो जय भीम को पांडव भीम समझता था। एक बार रास्ते में मिला। वो बचकर निकलना चाहता था लेकिन मैं उसका शिकार करना चाहता था। मेरे साथ एक और मेरा अम्बेड़करवादी मित्र था। मैंने उसे रोकते हुए हा - ‘जय भीम’ मेरे वामन मित्र ने कहा।

“जय भीम“ फिर पूछा - “पांडुपुत्र भीम”

मैंने कहा - “नहीं, भीमराव अम्बेड़कर वाला भीम।” कभी-कभी हम अनजाने में या जानबूझकर अपनी कट्टरता से अपने क्रोध से अपने से जुड़े कमजोर व्यक्ति को आहत कर बैठते हैं। यदि यही मेरा गरीब वामन मित्र किसी बड़ी नौकरी पर होता। तो क्या मैं इतनी हिम्मत कर सकता था? मैं कलेक्टरी नहीं कर रहा था। क्लर्क था। लेकिन अन्दर का गुस्सा उसी पर निकलना था। मैंने अपने अम्बेड़कर पंथी मित्र से परिचय करवाते हुए कहा - “ये हैं हमारे दोस्त शर्माजी।”

दोस्त ने कहा - “हम लोग बौद्ध हैं।”

मेरे वामन मित्र ने जो अपने पिछले अपमान से कुछ नाराज था। उसने कहा - “भगवान बुद्ध तो हमारे हैं। हम विष्णु का 23 वाँ अवतार मानते हैं। और तुम्हारे अम्बेड़कर की शुरुआती शिक्षा एक ब्राह्मण ने आरम्भ की थी। ये तो पता ही होगा तुम्हें।” उसके स्वर में व्यंग्य था।

“रही अम्बेड़कर की बात तो हम भी उनका सम्मान करते हैं। हमारे देश के संविधान निर्माता है।”

“ये हमारे लिए गर्व की बात है।” मैंने कहा।

“और उन्होंने एक ब्राह्मण स्त्री से विवाह किया था।” उसने कहा।

मैंने फिर गलती से कह दिया था जानबूझकर या गुस्से में “वी.एस.पी.का जोर है। यदि मायावती प्रधानमंत्री बन गई तो ब्राह्मणों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। शायद 2020 तक बचे ही ना।”

उसने भी गुस्से में कहा - “हर चन्द्रगुप्त के पीछे एक चाणक्य होता है। तुम्हारे कांशीराम के पीछे भी एक ब्राह्मण है।” मेरा साथी दलित मित्र उतना कट्टर नहीं था। या उसे मामला बिगड़ने का अहसास हो चुका था। उसने कहा - “हमें राजनीति से क्या लेना-देना। हमें तो साथ में ही रहना है। चलो चलते हैं। जय भीम.”

इस पर उसने कहा - “जय परशुराम”

मुझसे रहा नहीं गया। मैंने कहा - “हाँ वहीं परशुराम जिन्होंने कर्ण को श्राप दिया था।”

उसने पलटकर कहा - “वही कर्ण जिसने छल से विद्या प्राप्त की थी और अधर्मियों का साथ दिया था। आरक्षण के दम पर उछल रहे हो। हिम्मत है तो अपनी अक्ल और हिम्मत से कुछ करके बताओ।” मुझे गुस्सा आ गया। वाद-विवाद बढ़ गया। बढ़ता गया। उसे और मुझे लड़ते देख आस-पास के कुछ समझदार लोगों ने आकर कहा - “एक ही मुहल्ले के होकर आपस में लड़ रहे हो। हमारी लड़ाई देश के गद्दारों से है। आपस में मत लड़ो।”

मैंने गुस्से से कहा - “मैं हिन्दू नहीं बौद्ध हूँ।”

मुहल्ले के उस व्यक्ति ने विवाद खत्म करने के उद्देश्य से कहा - “बौद्ध, जैन सब हिन्दू धर्म की शाखायें हैं। मिलकर रहो। चलो जाओ यहां सो।” हम वहां से तो हट गये लेकिन मेरे अन्दर गुस्सा था। मैंने अपने अम्बेडकरपंथी मित्र से कहा - “चलो थाने, एस.सी., एस.टी. एक्ट के तहत रिपोर्ट लिखवाकर साले को अन्दर करवा दे। सारी गर्मी निकल जायेगी।”

लेकिन मेरे दोस्त ने कहा - “कानून हमारी सुरक्षा के लिए बना है। इसका दुरुपयोग करके हम असली पीड़ितों के साथ अन्याय करेंगे।”

मैं आज भी बौद्धिस्ट हूँ। अम्बेडकर पंथी हूँ। लेकिन अब मैंने सभाओं में जाना बन्द कर दिया है। कभी-कभी ज्यादा जोर देने पर चला जाता हूँ। लेकिन उनकी बातें अब दिमाग में नहीं रहती। वहीं बार-बार सवर्णों के विरोध में उन्हें गाली देने, अपमानित करके हमें उत्तेजित करने वाली बातें। नये लोग होते हैं आज भी उत्तेजित। लेकिन मुझे बुद्ध के विषय में सुनने को कुछ नहीं मिला। न ज्ञान, न ध्यान बस वही राजनैतिक बातें। इस बीच पता चला कि कांशीराम नहीं रहे। मायावती की सरकार भी नहीं रही। वे भी सत्ता पाने के प्रपंच में भी लगी हुई थी। उन्होंने ब्राह्मणों का सपोर्ट लिया। तभी वे उत्तरप्रदेश की मुख्यमंत्री बन पाई। वे भी अपनी कट्टर छवि से बाहर निकली फिर अखबारों के चैनलों के माध्यम से ही पता चलता कि फलां दलित नेता के पास कितनी हजार करोड़ों की सम्पत्ति है। हमारा बौद्ध बनना ठीक था। अम्बेडकर का अनुयायी होना ठीक था। लेकिन हम कब तक दूसरी जातियों के पूर्वजों को कोसते रहेंगे। राजनीति के लिए ठीक है। वोट बैंक के लिए ठीक है। बुद्ध की करुणा की बजाय हम भी दलित नेताओं की कट्टरता, आक्रोश भरे भाषणों के इर्द-गिर्द ज्यादा घूम रहे थे। या घुमाया जा रहा था। बाद में तो हर समाज संगठित होकर आरक्षण की मांग करने लगा था। साथ ही तोड़-फोड़ भी। मेरा विवाह हो चुका था। पत्नी से रोज चलती अनबन के कारण मन-मस्तिष्क परेशान रहने लगा था। मैं जिस ऑफिस में था वहां पर साहब सरदार थे। बड़े बाबू मुसलमान। एकाउन्टेंट शास्त्री जी और मैं दलित मेरे साथ क्लर्क की पोस्ट पर हेतराम उईके था। और चपरासी दुबे। कभी-कभी कुछ बातें खलती थी। जब एक दूसरे पर जातिगत व्यंग्य किये जाते। लेकिन हम सब सरकारी कर्मचारी थे सो सहिष्णुता थी हममें। हमारे नेता जरूर आकर पूछते। सभाओं में सम्बोधित करते कि यदि कोई जातिगत प्रताड़ित करे तो हमें बताये। तुरन्त आन्दोलन, मोर्चा निकाला जायेगा। थाने का घेराव किया जायेगा। शास्त्री जी हमें सरकारी दामाद कहते थे और हेतराम अक्सर उनकी तरफ अंगूठा दिखाते हुए कहता। अब नहीं दूंगा। सरदार साहब को भी कभी-कभी 84 के दंगे याद आ जाते और वे हम सबसे चिढ़कर बातें करने लगते। खान साहब के मुंह से भी समय-समय पर मायूसी भरी बातें निकलती। वे कहते हम तो अपने ही घर में पराये हैं। माई नेम इज खान बट आइ एम नाट ए टेरेरिस्ट। एक दूसरे के बिना किसी का काम नहीं चलता था। फिर भी कभी-कभी सब एक दूसरे से चिढ़कर बात करते। ऐसा भी कह सकते हैं कि दिलों में कुछ चोटे थी। कुछ भेद थे। चपरासी दुबे मुझे ऐसे देखता था जैसे वो मेरी वजह से चपरासी हो अन्यथा उसे मेरी जगह और मुझे उसकी जगह होना चाहिए।

हेतराम उईके के प्रमोशन पर मुझे बहुत बुरा लगा। हम साथ-साथ भर्ती हुए थे। उसे आदिवासी होने का फायदा मिला। मैंने बड़े बाबू से शिकायत भरे स्वर में कहा - “मैं अधिक योग्य

था प्रमोशन के।” उन्होंने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा - “तुम्हारा भी हो जायेगा।” पास खड़े दुबे ने चिढ़कर कहा - “हमें तो चपरासी की पोस्ट से ही रिटायर होना है। साला बामन होना भी गुनाह हो गया।” ये उसने मुझे सुनाकर कहा था। जैसे कि उसके चपरासी होने में या बने रहने में मेरा हाथ हो। छोटा सा घरेलू झगड़ा था। मेरी पत्नी पता नहीं कैसे, किसके कहने पर अपने माता-पिता को लेकर थाने पहुंच गई। पुलिस का बुलावा आ गया। मेरी जान गले में अटक गई। मुझे बताया गया कि मुझपर प्रताड़ना और दहेज का केस बनेगा। मुझे जेल जाना होगा। जमानत करवानी पड़ेगी। केस चलेगा मुझपर। सजा हो गई तो नौकरी गई। सबकुछ खत्मा मैं घबरा गया। मैंने तुरन्त थाने से ही अपने धर्म, जाति के नेता को फोन लगाकर सारी स्थिति बताई। उन्होंने कहा - “यह जातिगत मामला नहीं है। तुम्हारा घरेलू मामला है। इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता।” और उन्होंने फोन काट दिया। थाने में मेरे समाज का एक एस.आई.था। मैंने उससे कहा - “आप कुछ करो।” उसने बेरुखी से कहा - “इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। कुछ रुपये, पानी का इंतजाम करो तो बात चलाये अधिकारी से।”

“कितने”

“अभी बीस हजार मंगवा लो।” उसने धीरे से कहा।

“मैं बच तो जाऊँगा।”

“बचोगे तो नहीं, हँ केस कमजोर बनवा दूंगा।”

मैं डर गया। मुझे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। मैंने अपने अधिकारी और बड़े बाबू को फोन लगाकर सारी स्थिति बताई। थोड़ी ही देर में ऑफिस के सभी लोग आ गये। सरदार साहब शास्त्री जी, खान साहब, उइके और दुबे भी साथ था। मुझे पुलिस थाने के पूछताछ कक्ष में जमीन पर बिठाया गया था। शास्त्री जी ने कहा - “चिन्ता मत करो। हम कुछ करते हैं।”

थाना प्रभारी शर्मा से सरदार साहब ने बात की। वे पुराने मित्र थे। मुझे थाना प्रभारी के कक्ष में बुलाया गया। मुझे बैठने को कहा गया। शास्त्रीजी ने कहा - “सर, आदमी अच्छा है। कोर्ट कचहरी के चक्कर में फस गया तो मुसीबत हो जायेगी। कुछ करिये ना।”

थाना प्रभारी ने कहा - “इन्हें अपनी पत्नी से बात करके उसे समझाना होगा।” फिर मेरी तरफ देखते हुए बोले - “चिन्ता मत करो। तुम अपनी पत्नी से बात करो। उसे समझाओ।”

फिर दूसरे कक्ष में मुझे और मेरी पत्नी को मिलवाया गया। मैंने पत्नी से माफी मांगी। उसे समझाया कि बदनामी के साथ भविष्य भी चौपट हो जायेगा। तुम जो कहो। मैं करने को तैयार हूँ।”

लेकिन पत्नी मेरी बात मानने को तैयार नहीं थी। शास्त्रीजी, खान साहब दोनों बुजुर्ग थे। उन्होंने मेरी पत्नी को समझाया। शास्त्रीजी ने कहा - “बेटी मुझे बताओ। तुम्हें क्या तकलीफ है? मैं डांटूंगा इसे। मैं समझाऊँगा। एक बार केस गया तो तुम दोनों की मुसीबत हो जायेगी।”

खान साहब ने कहा - “घर की बात घर में निपट जाये। यही बेहतर है। किसके कहने से मूर्खता कर रही है। तुम्हें जो चाहिए। मिल जायेगा। तलाक चाहिए। एक मुश्त रकम चाहिए। पति के जेल जाने से तुम्हें क्या मिलेगा?”

दोनों भांति-भांति से मेरी पत्नी को समझाते रहे। पत्नी इस बात पर एफ.आई.आर. लेने को वापिस हो गई कि मैं उसे लेकर अलग रहूँ। जब मैंने इस बात का विरोध करना चाहा। तो दुबे ने आकर मेरा कंधा दबाते हुए धीरे से कहा - “पहले यहां से निकलो। बाकी घर में समझ लेना आपस में।”

मैंने पत्नी की बात मान ली। एफ.आई.आर.पत्नी ने वापिस ले ली और सुलहनामा के कागज पर हस्ताक्षर कर दिये। गवाह में दुबे और उइके ने हस्ताक्षर किये। थाने से मैं पत्नी को लेकर बाहर निकला। पुलिस थाने के बाहर सरदार साहब, खान साहब, शास्त्रीजी, उइके, दुबे और मैं खड़ा था। एक सेकेंड को लगा कि पूरा भारत एक जुट हो गया हो। मैंने सबका शुक्रिया अदा किया। “कल ऑफिस में मिलते हैं,” कहकर सब अपने-अपने घर की ओर निकल गये। मैंने अपनी पत्नी से कहा - “एक मिनट रुकना।” और मैं सीधा थाना प्रभारी के कक्ष में पहुंचा। उन्होंने मुझे अजीब निगाह से देखते हुए कहा - “अब क्या है?”

“सर, कुछ पूछना था। आपका चेहरा मेरे एक पुराने दोस्त से मिलता है।”

“किससे?”

“दीपक शर्मा से”

“वो मेरा भाई था”

“था” मैंने चौंककर कहा।

“हाँ, कमजोर बुझदिल था। उसने बेरोजगारी से तंग आकर आत्महत्या कर ली।”

“कब ?” मेरे अन्दर एक धमाका सा हुआ।

“दो साल पहले।” थाना प्रभारी शर्मा ने उदास स्वर में कहा।

“सारी, सर।” और मैं बाहर आ गया। पता नहीं क्यों मैं बोद्धिस्ट, मैं अम्बेड़कर पंथी, मैं ब्राह्मण विरोधी क्यों आज अपने पुराने मित्र दीपक शर्मा को याद कर रहा था। क्यों मेरे अन्दर कुछ चटक कर टूट सा गया था। क्यों उसकी मौत की खबर सुनकर मुझे धक्का सा लगा? जबकि मैं उसे एक अरसे पहले लगभग भूल चुका था।

....

संपर्क-सूत्र :- पाटनी कालोनी, भरत नगर, चन्दनगाँव, छिन्दवाड़ा(म.प्र.)-480001.

मौ:9425405022

माँ का कमरा

तेलुगु मूल :- रामा चन्द्रमौलि
अनुवाद :- डॉ.कोम्मिशेट्टि मोहन

किसी चीज़ का मूल्य, उस चीज़ के नहीं रहने पर ही मालूम होता है।
मनुष्य की बात भी ऐसी ही है। एक मनुष्य के हम से दूर होते समय....पूरी तरह बिछड़ कर खो जाने पर...आखिर मनुष्य का शाश्वत रूप से निष्क्रमण होने पर
मूल्य हमेशा सापेक्ष...संदर्भोचित...क्या वे जीवन के अनुभव से बदलनेवाले पाठ हैं?
मनुष्यों के अनुसार...उनकी आयु...उनकी सामाजिक उपयोगिता...खासकर आर्थिक नेपथ्य के अनुसार...उस व्यक्ति से किसी को होनेवाले फ़ायदे के अनुसार मूल्य समयानुकूल बदलते हुए....क्या संबंधित व्यक्तियों पर शासन करते हैं?

हाँ...

शायद ठीक ऐसा ही है...संदर्भ के अनुसार....आवश्यकता के अनुसार....भविष्य में उस व्यक्ति से प्राप्त होनेवाले प्रयोजनों के अनुसार ही मनुष्य के सारे रिश्ते बंधन...

पैंसठ वर्ष का रामचन्द्र उस कमरे की खिड़की में से देख रहा है। दिगंतों में...शून्य में...आसमान में....

सब कुछ दिखाई देते हुए ही कुछ नहीं दिखाई दे रहा है।

वह जिस कमरे के पास खड़ा है....वह माँ का कमरा है...।

पिताजी की मृत्यु हो जाने के पश्चातअकेली रह गई माँ की देख भाल....छः भाई ...तीन बहिनेंसब मिलकर...बारी बारी से

पता नहीं क्यों...लेकिन...रामचन्द्र को अकस्मात सागर एक तूफान बन...उमड़ते दुख ने बाढ़ सा डुबो दिया।

माँ का चेहरा...दीनता से...करुणा पूर्ण....निस्सहाय सा...

माँ के मरकर कई साल बीत चुके हैं। शायद दस साल हो गये... लेकिन....कल या परसों ही चल बसी हो...यादेंनित्य नूतन सी....

उपेक्षा...निरादर....दायित्व का लोप...ऐसा नीच से नीच व्यवहार जिसका शिक्षा और संस्कार से विलकुल संबंध ही न हो।

अकेले खड़े हुए रामचन्द्र ने अप्रयत्न ही पीछे मुड़कर सारे कमरे को अपनी आँखों से टटोला।

माँ के उस कमरे से चल बसने के दिन से वह कमरा ऐसा ही रह गया। वही डबल कॉट बेड़.....वे ही बिस्तर....वही सी.एल.एफ बल्ब...वही पंखा...वे ही दीवारें...वे ही परदे....वही बेड लैंप...हवा भर में माँ की वही गंध....नहीं...नहीं.....माँ की सुगंध...माँ की याद मानो माँ वहीं पर बैठी हो...कोई तीव्र तड़प....

आखिर उस घर में हम दोनों ही बचे....मैं और लक्ष्मी....जब कभी बच्चे आते हैं, उस कमरे में सोने को कहे तो कहते थे - “नहीं, दादी माँ उसी कमरे में रहती थी मर गई है ... हम नहीं सोयेंगे...डर लगता है।”

अपनी बारी के अनुसार माँ जब उसके घर में आकर उस कमरे में रहती...वह दस बजे हड़बड़ी से ऑफिस जाने लगता...

“अरे बडऊ...लौटते समय ये दवा की गोलियाँ ला रे...”

अपने कमरे में से हीन...कमजोर स्वर में मानो विनती कर रही हो...

क्या किया था उसने ... घृणा की थी। चिढ़ने लगा था... “लालूंगा री...हमेशा दवायें...दवायें...अगर एक जून दवा न खाओ, तो क्या मर जाओगी...” कहते हुए बाहर को दौड़...

फिर पता नहीं कब कभी रात को लौटना।

डरते डरते पूछती ... कभी रात के गुजर जाने पर ... ‘बडऊ...क्या दवा की गोलियाँ लाये हो’....

वह जवाब नहीं देता था। वह देह की भाषा में ही कहता था....“नहीं लाया...लाऊंगा री...”। तब माँ के चेहरे पर बड़ी चिंता...तीव्र निराशा से...धीरे-धीरे..... पग में पग डालते हुए...दीवारों के सहारे...अपने कमरे में चली जाती थी।

इतने दिनों के बाद माँ की याद आते ही...कलेजे में से कोई आग का पहाड़ फूटता सा....दुख....घोर अपराध हो गया। गलती...ऐसी गलती जिसे क्षमा नहीं कर सकते...में ने ऐसी गलती कर दी जिसे क्षमा नहीं कर सकते....

कभी एक दिन ... माँ के कमरे में माँ की खाट के पास जाकर बगल में बैठकर ...पाँच मिनट के लिए बतिया कर ... वह भी... असहिष्णुता से....औपचारिक रूप से... “माँ है न ! बेचारी, अक्सर थोड़ी देर बतियाते रहें...” लक्ष्मी के बार बार फटकारने पर...बलात्...

“मुझे ये दवा-दारू कुछ नहीं चाहिए रे बडऊ ! हर रोज एक आधे घंटे के लिए मुझसे दिल खोलकर बतियाना बेटा...मुझे वही काफ़ी है।” सारी बीमारियाँ दूर हो जायेंगी....” अनुरोध करती थी...नहीं वो...उस समय समझ में नहीं आया था। माँ की प्यार भरी, अति सहज, छोटी सी इच्छा के पीछे माँ का हृदय समझ में नहीं आया था।

व्यावहारिक मिथ्या संसार की लालसा में वह जाते उस अज्ञान की स्थिति में समझ में नहीं आया था। आँखों में परतें...

इतने सारे बच्चों का पालन पोषण कर अकेली ने बड़ा किया....पढ़ाया लिखाया.... शादियाँ करवायीं...सबको अपने जीवन में स्थिरता से जम जाने में अपनी भूमिका निभायी....

बुढ़ापा...पति को खोने की बेबसी...अकेलापन...नियंत्रण खोकर, किसी एक की सहारा अनिवार्य बन...शारीरिक दुस्थितिडिपेन्डेन्सी....

पिता के चल बसने के पश्चातसारे कर्मकांड पूरे हो जाने पर....गर्मी के दोपहर में....“माँ का मामला कैसे सुलझावें बडे भैया...बड़ी बहिन...” बाकी लोगों के पूछने पर...

वह चुप रह गया था। इतना पढ़ा लिखा है। समझदार है। कई पुस्तकें पढ़कर दुनिया दारी प्राप्त की है...विज्ञ है।

जब बोलना है तब नहीं बोलना अपराध है। चुप्पी एक युद्ध का अपराध है। उसने अपराध किया है। माँ के प्रति द्रोह किया है।

बड़ी बहिन ने कहा - “छ: बेटे हैं न रे....हर एक के घर में दो महीन...साल में ...हिसाब भी ठीक होगा....”

इन्सान को....माँ को...बारी बारी से बोझ को बाँट लेना....

उस समय माँ का दुख देखा था उसने। चमेली के वितान के नीचे...जमीन पर ही...निश्चल बैठी...जमीन की ओर देखती हुई...

वह सारा व्यवहार सुन-देख रही थी...या नहीं...पता नहीं चलता था...भाव शून्य चेहरा...अभी तक याद ही है।

अब उसे उस चेहरे की याद आती है तो अपने आप पर घृणा...शर्म....डर...सबके घुलमिलने की एक भ्रष्टानुभूति....

अब शुरू हुआ...माँ के बँटवारे की यात्रा....एक सुदीर्घ जीवन काल में माँ की सारी संपत्ति अब एक सूटकेस में बदल कर...

बस इतना ही....माँ जिसके घर भी जावें, वही एक सूटकेस के साथ जाती थी। असल में माँ में जो सजीव क्रांति थी वह कभी मर गई थी। अब वह सिर्फ एक जिन्दा शव थी।

पाँचवीं बार...या छठवीं बार...अपनी बारी के अनुसार माँ जब आयी थी...उसने कहा- “माँ अब तुम हमेशा के लिए हमारे घर में ठहर जाओ री.....अब किसी के घर मत जाना।” शर्म की बात यह थी कि वह बात भी उसने अपने आप नहीं कही थी...लक्ष्मी के समझाने पर कहा था। निजी व्यक्तित्व ही नहीं था। माँ की होश...दायित्व...नहीं तो.... विलकुल नहीं था।

क्यों ऐसा हुआ...पूछ...

माँ एक बार माँ के कमरे में से जुड़े हुए बाँथ रूम में नहाकर अपने कमरे में पोंछती हुई...अशक्त होने के कारण खाट की पाटी पर बैठ गई। शरीर पर ठीक से कपड़े भी नहीं पहने...तभी कोई आया...उधर खिड़की की बगल में से।

लक्ष्मी ने कहा - असहिष्णुता पूर्वक “शरीर पर कपड़े पहन सकती न...अगर कोई देखे तो...“ और कुछ कुड़बुडाती हुई...

माँ ने अत्यंत निस्सहाय, दीन स्थिति में कहा- “क्या है बिटिया ! अब मेरे पास किसी को देखने के लिएमुझ से नहीं हो रहा हैमैं क्या करूँ...?”

वह बात सुनाई पड़ी। कोई फाँइल पर लिखते उसके मानो पेट में कोई हाथ रखकर ऐंठ रहा हो...क्षोभ...सिकुड़ कर....शर्म के मारे मर कर...खोखले सा बचकर....

फिर ऑफिस जाने के पहले...डरते डरते....शर्म के मारे...उत्सुकता से...माँ के कमरे में देखा तो...

तब माँ... खाट की पाटी पर वैसे ही एक विकृत मूर्ति सी बैठकर...शरीर पर से पुरानी साड़ी के फिसलने पर भी...ध्यान दिये बिना...तब तक ही शरीर भर में फैले चर्म रोग से संबंधित “सोर्वेटे” ट्यूब से ‘जेल’ का लेपन कर रही थीसफेद बाल फैला कर चेहरे भर शून्यता से...पगली सी...

छाप पड़ गई। माँ की वह भंगिमा...वह रूप...उसकी निश्चल दृष्टि....

X X X X

रामचन्द्र चौक पड़ा। आहट हुई। माँ के कमरे से जुड़े हुए बाँथरूम में से...

क्या लक्ष्मी नहाकर बाहर निकल रही है?

“उम्र के ढल गये लोग....नहाते समय बाँथ रूम के भीतर से अर्गल(बोल्ड) नहीं लगाना अच्छा है...क्योंकि...” उस बीच कभी डाक्टर की बात याद आ कर...

लक्ष्मी...नहाते समय....व्यक्तिगत रूप से स्वयं...बॉथरूम के बाहर खड़े हो कर...चहल पहल को सावधानी से गौर करते हुए...सुनते हुए...

लक्ष्मी बाहर आ रही है।

रामचन्द्र हड़बड़ी के साथ खिड़की से अलग हटते हुए...कोई अखबार पढ़ता सा...अभिनय करते हुए...

लक्ष्मी को पिछले दो महीनों से एक तरह की मानसिक बीमारी....डिप्रेशन...अकस्मात...ब्रेक डाऊन....अक्सर तार में से बिजली गायब होता सा...तुरंत चेतना रहित....दृष्टि निश्चल हो....आँखें शून्य बन... पगली सी...

एक समय की माँ जैसी...

डाक्टरों ने कहा- 'डिमेन्सिया' है। अर्थात्भूलना....याद करना...टूटकर फिर जमता सा...अस्तव्यस्त होता नाजुक मानसिक स्थिति...

कुछ दिनों के पहले ही लक्ष्मी ने कहा था...आज से मैं माँ के कमरे में सोऊँगी...

क्योंहमारा बेड़रूम है ना।

यों ही.....पता नहीं क्यों मुझे वहीं पर अच्छा लगता है।

लक्ष्मी को यह अजीब इच्छा क्यों हुई...पूछ....पता नहीं....क्यों...

उसके बाजार में चले जाकर लौटने तक लक्ष्मी अपने कपड़े लेकर माँ के कमरे में बदल गई थी।

कमरे के भीतर झाँक कर देखा रामचन्द्र ने.....आहट के बिना धीरे से....

खाट की पाटी पर बैठकर...शरीर पर से फिसलती सूत की साड़ी पर ध्यान दिये बिना....सफेद बाल...बिखरे हुए....रुखे रुखेपगली सी....

माँ की जैसी बीमारी....वही चर्म रोग....वही 'सोर्वेट' ट्यूब को... दवा कर 'जेल' को ...पाँवों...पिंडलियों पर लेपन कर रही है।

माँ-माँउस समय की माँ...माँ के कमरे में....अब लक्ष्मी....फिर वही रूप...वही स्थिति...वही दृश्य....वही माँ...

पता नहीं क्यों रामचन्द्र को अपार दुःख उमड़ पड़ने से...चेहरे को हाथों में छिपाकर....विलख विलख कर रोते हुए...

माँलक्ष्मी....एक अस्तमय फिर और एक अस्तमय...

हमेशा सुबह के बारे में सोचता आदमी हमेशा सचेत करते अस्तमय के बारे में पता नहीं क्यों नहीं सोचता...

माँ के कमरे में....एक डूबता सूरज...धीरे धीरे

...

संपर्क-सूत्र :- 24/327-4 अमृता गार्डन्स, पवर हाऊज स्ट्रीट, प्रोद्दटूर-516360 कडपा (जिला)

आन्ध्र प्रदेश। मो:9100155308

तेलुगु मूल :- 11-24-498, टेलीफोन भवन लेन, पोचम्मा मैदान, वरंगल-506002

तेलंगाना। मो:9390109993

जीवन के कठोर धरातल को सींचती कविताएँ

- रामचरण सिंह 'साथी'

यद्यपि एक समय था जब छन्दमुक्त कविता को मान्यता दिलाने के लिए महाप्राण 'निराला' को बहुत संघर्ष करना पड़ा था लेकिन आजादी के बाद एक समय ऐसा भी आया जब कवि और साहित्यिक लोग छन्दबद्ध कविता को पम्परागत रूढ़िवादी कहकर बचने लगे और छन्दमुक्त कविताओं की बाढ़ सी आ गई। जिनमें छायावाद से लेकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता आदि अनेक नाम लिए जा सकते हैं।

इससे पहले भी अरुणा जी का एक काव्य-संग्रह 'वर्षा' की पहली बूँद

मैंने पढ़ा है जिसकी एक लम्बी कविता ने बहुत प्रभावित किया। कविता का नाम है 'इसी वृक्ष के नीचे' धन्य हो, तीस पृष्ठ की कविता और पाठक ऊब महसूस नहीं करता यही लेखनी की ताकत और कविता की रोचकता है। जहाँ तक बात है इस काव्य संग्रह की तो इसमें लगभग सत्ताईस कविताएँ हैं। प्रत्येक कविता को पढ़ने के बाद मैं यह कह सकता हूँ कि अरुणा जी एक संजीदा रचनाकार हैं। पहली ही कविता 'आधी खुली खिड़की' जो पुस्तक का शीर्षक भी है, बहुत ही महत्त्वपूर्ण, महनीय और सारगर्भित रचना है। कवयित्री को जीवन में अधूरापन नहीं चाहिये; अधूरापन नहीं चाहिए, बल्कि जीवन की पूर्णता ही लक्ष्य होना चाहिए। यूँ आधी खुली खिड़की से भी बहुत सारी चीजें दृष्टिगोचर हो जाती हैं लेकिन पूरी दुनिया का पूरा आकाश आधी खुली खिड़की से देखना सम्भव नहीं है।

'शहर, दंगा और कर्फ्यू' संवेदनाओं को झकझोरने में समर्थ एक आकर्षक रचना है। कारुणिक दृश्य उत्पन्न करती है। और दंगों की वीभत्सता पर सोचने को मजबूर करती है -

- "जिस्म इधर-उधर छूट गये/साईकिल और चप्पलों की शकल में /भूख बीमारी और दहशत/एकाएक बेनकाब हो गए सब /गैरतमन्दों ने आत्माएँ सीलबन्द कर लीं"।

- ऐसी रचनाएँ किसी कवि की पहचान हुआ करती हैं।

आजादी और व्यवस्था एक लम्बी कविता है। आजादी के मायने और सियासतदारों की नंगई का बाखूबी चित्रांकन करती यह कविता पाठक को सोचने पर मजबूर करती है-

"कुर्सी पर बैठते ही/आदमी के/आँख और कान बन्द हो जाते हैं।/ घोड़े और घास की यारी/वक्त के सलीब पर सिर्फ गरीब चढ़ता है/आजादी के तलवे चढ़ाये/वे दोड़ रहे हैं/और यहीं कहीं तिरंगे में लिपटी/एक लाश पड़ी है"-आदि सूक्तिपरक वाक्य कविता की खूबसूरती में चार चाँद तो लगाते ही हैं साथ ही कविता की गहराई को भी दर्शाते हैं।

'तुम्हे दुख तो होगा-मगर' यह कविता कवि की बेचारगी बयां करती है। यहाँ तक कि कवि विचारशून्य हो जाता है कि वह क्या करे? सामाजिक विद्रूपताएँ इतनी वीभत्स और भयंकर हैं कि कवि सोचता है कविता किस पर लिखें। लेकिन कोई कलमकार ऐसा नहीं करेगा। हाँ कुछ

देर के लिये भले ही उद्वेलित हो जाए लेकिन पीड़ा जितनी अधिक होगी रचना उतनी ही अच्छी और सच्ची होगी।

संग्रह की लगभग सभी रचनाएँ अच्छी हैं। कई तो बहुत ही अच्छी हैं, पठनीय हैं। संदेश छोड़ती हैं। कोई भी रचना अवांछनीय और अनावश्यक नहीं है। अरुणा जी एक शब्द साधक कवयित्री हैं। कहाँ क्या कहना है उन्हें अच्छी तरह मालूम है। प्रत्येक कविता की व्याख्या करना न सम्भव है और न उचित ही परन्तु इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि काव्य संग्रह 'आधी खुली खिड़की' एक पठनीय और संग्रहणीय पुस्तक है। मेरी समस्त शुभकामनाएँ उनके साथ हैं। आशा करता हूँ कि काव्य जगत में यह पुस्तक अरुणा जी को विशेष स्थान दिलाएगी।

...

संपर्क-सूत्र :- कवि/साहित्यकार, पूर्व प्रधानाचार्य, दिल्ली-93 मो:9811421727

पुस्तक का नाम: 'आधी खुली खिड़की'
कवयित्री-अरुणा दुबलिश-लोकहित प्रकाशन, दिल्ली-93
प्रथम संस्करण 2017, मूल्य-रु.200/-

रचनाकारों के लिए निर्देश

1. 'साहित्य-सेतु' (हिन्दी त्रैमासिक) में प्रकाशनार्थ अपनी रचनाओं को रचनाकार टाइप करके भेजें।
2. रचनाएँ टंकित करते समय प्रूफरीडिंग का विशेष ध्यान अवश्य रखें।
3. लेख या समीक्षा की सामग्री की सीमा पाँच पृष्ठों (टंकित) से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि सीमा अधिक होगी तो विषय विशेषज्ञों / संपादक को यह अधिकार होगा कि वह यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें।
4. अपनी रचनाओं के साथ इस आशय का घोषणा-पत्र अवश्य संलग्न करें कि यह रचना मौलिक है और इसका प्रकाशन कहीं अन्यत्र नहीं हुआ है।
5. रचना, विषय विशेषज्ञों की सहमति के बाद ही प्रकाशित की जाएगी। इसलिए आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें। पुस्तक संदर्भ, पत्र / पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन वर्ष तथा संस्करण का उल्लेख आवश्यक हो।
6. आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त परिचय / छायाचित्र और संपर्क-सूत्र अवश्य भेजें।
7. पुस्तक समीक्षा के लिए चर्चित तथा महत्वपूर्ण पुस्तकों / पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक / पत्रिका की दो प्रतियाँ रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
8. पत्रिका प्राप्त होने के बाद अपनी लिखित प्रतिक्रियाएँ / सुझाव अवश्य भेजें ताकि हम उन्हें अगले अंक में प्रकाशित कर सकें।

* * *



आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी, हैदराबाद

स्थापना : 1982

पुनर्गठन : 12 अप्रैल, 2007

लक्ष्य एवं उद्देश्य

- * आंध्र प्रदेश राज्य में हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देना
- * तेलुगु भाषी हिंदी रचनाकारों के लेखन को प्रोत्साहन देना
- * तेलुगु भाषा, साहित्य और संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाना

गतिविधियाँ

- * विशेष व्याख्यान/ भाषण/संगोष्ठियाँ/ग्रंथों का लोकार्पण आदि का आयोजन करना
- * साहित्यिक संगोष्ठियों को प्रोत्साहित करना
- * प्रत्येक वर्ष तेलुगु के एक उत्कृष्ट ग्रंथ का हिंदी में अनुवाद करवाकर, उसे प्रकाशित करना
- * हिंदी भाषा, साहित्य के विकास के लिए पुस्तकें, कोश आदि प्रकाशित करना
- * प्रत्येक वर्ष एक तेलुगु भाषी विशिष्ट हिंदी सेवी/रचनाकार को एक लाख रुपये के साथ 'पद्मभूषण डॉ.मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार' से सम्मानित करना
- * प्रत्येक वर्ष तेलुगु भाषी हिंदी युवा लेखक के लिए रु.25,000/- का पुरस्कार देना (जो 50 वर्ष के भीतर हो)
- * प्रत्येक वर्ष दक्षिण भारतीय भाषाओं (तमिल, कन्नड़, मलयालम) में से एक हिंदी लेखक के लिए रु.25,000/- का पुरस्कार देना (जो आंध्र प्रदेश के (10 वर्ष) का निवासी हो)
- * प्रत्येक वर्ष हिंदी भाषी हिंदी लेखक के लिए रु.25,000/- का पुरस्कार देना (जो आंध्र प्रदेश के (10वर्ष)का निवासी हो)
- * प्रत्येक वर्ष हिंदीतर एवं दक्षिणतर भारतीय भाषाओं में से एक लेखक के लिए रु.25,000/- का पुरस्कार देना (जो आंध्र प्रदेश के (10 वर्ष) का निवासी हो)
- * प्रत्येक वर्ष एक तेलुगु की मौलिक उत्तम रचना के उत्तम हिंदी अनुवाद के लिए रु.25,000/- का पुरस्कार देना
- * प्रत्येक वर्ष तेलुगु भाषी हिंदी रचनाकारों की मौलिक, अनूदित हिंदी रचनाओं के प्रकाशनार्थ प्रत्येक रचना के लिए अधिकतम राशि रु.25,000/- (विषय और पत्रों के आधार पर) प्रकाशन अनुदान देकर प्रोत्साहित करना

निदेशक

8वीं मंजिल, वेस्ट विंग, गगन विहार, एम.जे.रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-01, फोन: 040-2465 4849

Email: statchindiacademy@gmail.com; Web: www.aphindiacademy.org

श्रद्धांजलि



भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार ग्रहीता, हिन्दी के स्वनामधन्य कवि **केदारनाथ सिंह** नहीं रहें। कविता के समकालीन क्षितिज का सबसे बड़ा खितारा अस्त हो गया। तीसरा सप्तक के अद्वितीय कवि **केदारनाथ सिंह** के आकस्मिक निधन पर 'साहित्य-सेतु' परिवार उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है। हिन्दी साहित्य की इस अपूरणीय क्षति से हिन्दी जगत हतप्रभ है।

संपादक
साहित्य सेतु
हैदराबाद

RNI No. TELHIN/2014/59847